DAMAGE BOOK

Brown Colour Book

आधुनिक गद्य-संग्रह

आलोचना व निबन्ध



राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

: प्रकाशक :

भदंत आनंद कौसल्यायन

मंत्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रथम संस्करण

 ] जून, १९४९ [मूल्य अेक रु० आठ आ०

मुद्रक :-नारायणदास जाजू

श्रीकृष्ण प्रि. वर्क्स, वर्धा

निवेदन

बहुत दिनसे अिस बातकी आवश्यकता अनुभव हो रही थी कि समितिकी अुपाधि परीक्षा—कोविद—के पाठ्यक्रममें रखने योग्य अेक आधुनिक गद्य-संग्रह तैयार कराया जाय।

स्पष्ट ही है कि राष्ट्रभाषा और अुसके साहित्यकी निरंतर गतिशीलताके कारण यह कार्य जितना सरल प्रतीत होता है अुतना सरल न था। बहुत सोच-विचारके बाद अनेक वर्षोंसे राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यमें. लगे हुअे बहुतसे विद्वान बंधुओंसे अिस आधुनिक गद्य-संग्रहके लिये अुनके सुझाव मँगाये गये। यह अेक बड़ी लंबी निबंध-सूची थी। परीक्षा-समितिके आदेशपर श्री प्रभुदास रामचंद्र भूपटकर, श्री पंढरीनाथ मुकुंद डांगरे, श्री कांतिलाल जोशी तथा श्री रामेश्वरदयाल दुबेने अुस निबंध-सूचीमेंसे योग्य चुनाव किया।

हम श्री भूपटकरजीके विशेषरूपसे कृतज्ञ हैं कि अुन्होंने हमारी प्रार्थनापर इस आधुनिक निबंध-संग्रहका संपादन भी कर दिया।

हमें विश्वास है कि जिनके लिये यह संग्रह तैयार किया गया है अुनकी न केवल यह ज्ञान-वृद्धिमें सहायक होगा, किंतु अुन्हें सरस भी लगेगा।

—मन्त्री,

२८ जून '४९

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा।

विषय-सूची

भूमिका

रीतिकालीन संध्यामें जब साहित्यगगनमें भारतेन्दुका अुदय हुआ अुससे पूर्व देशमें हिंदी-गद्यको स्वच्छ, सुस्थिर और सुस्पष्ट बनानेका प्रयत्न नहीं हुआ था। पर गद्य, पद्यके सम्मुख मैदानमें अुतर चुका था।

भारतेन्दुने जिस गद्य-साहित्यको विकसित किया अुसके माँजनेमें सबसे बड़ा हाथ धर्म-प्रचारकोंका है। अीसाअी धर्म-प्रचारक बाअिबिल तथा अन्य पुस्तकोंका हिंदीमें अनुवाद कर रहे थे। बादमें आर्य-धर्म-प्रचारक स्वामी दयानन्द अेवं अन्य आर्य-समाजियोंने अपने भाषणोंमें, खंडन-मंडन-संबंधी व्याख्यानोंमें भी अुस गद्यको अेक तरहसे पूर्णता देनेका प्रयत्न किया।

अंग्रेजी राज्य देशमें स्थापित होते ही दिल्ली-आगरेका वैभव प्रायः लुप्त-सा हो चला था। और दिल्ली-आगरेके बड़े-बड़े व्यवसायी, मँजे हुअे साहित्यिक, देशके पूर्वी भागोंमें ही नहीं सुदूर दक्षिण हैदराबादतकमें फैल रहे थे। स्मरण रहे कि दक्खिनी अुर्दूके जन्मदाता अधिकांश कवि और लेखक दिल्लीसे ही आये थे। हिंदीके आदि गद्य-लेखकोंमें प्रमुख सैयद अिंशाअल्लाखाँ भी अुन्हींमेंसे थे।

मुगल-साम्राज्यके अंतिम दिनोंमें फारसीके स्थानपर जिस अुर्दूको राजभाषा बनाया गया था वह भी खड़ी बोलीके ढाँचेपर ही ढली थी। यदि अंग्रेज न आते तो शायद वहीं हिंदी-अुर्दू दूध-पानीकी तरह घुल-मिल गअी होती।

अंग्रेजोंने अपने कर्मचारियोंकी तैयारीके लिये अिस बातको आवश्यक समझा कि अुन्हें देशी भाषामें शिक्षा दी जाय। निश्चय ही यह देशी भाषा अन्तर्वेद (युक्तप्रांत) और दिल्ली, मेरठ-जैसे मध्य-देशकी भाषा हो सकती थी। अंग्रेजोंने व्यर्थ ही नहीं, कुछ सोच-समझकर हिंदी-अुर्दूके विवादको प्रश्रय दिया और फोर्ट विलियम कालिजमें जान गिलक्राअिस्ट महोदयने हिंदी-अुर्दूके लेखकोंको अलग-अलग पदोंपर नियुक्तकर हिंदी-अुर्दूके गद्य-साहित्यकी पाठ्य-पुस्तकोंकी रचना प्रारंभ कराअी।

लल्लूलाल, सदल मिश्र, सदासुखलाल आदि जिस कोटिकी गद्य-रचना कर रहे थे असीकी श्रेणीमें हम सैयद अिंशाअल्लाखाँको भी देखते हैं। अंतर अितना ही है कि अिंशाअल्लाकी 'रानी केतकीकी कहानी'—जिसमें 'हिंदवी' छुट और किसी बोली (बाहरी बोली) का पुट नहीं मिलता है की शैलीपर कहीं कहीं फारसी शैलीकी छाप है। वह युग (संवत् १८६०) हिंदी-गद्यका जन्मकाल था जिसमें लल्लूलालके 'प्रेमसागर', सदासुखलालके 'सुखसागर', सदल मिश्रके 'नासिकेतोपाख्यान' और सैयद अिंशाअल्लाकी 'रानी केतकीकी कहानी' लिखी गअी

राज-दरबारकी भाषा होनेके कारण अुर्दूको सुगमतासे कचहरियोंमें स्थान प्राप्त हुआ। मुसलमान अिसीको शिक्षाका माध्यम बनाना चाहते थे।

हिंदीके लिये प्रारंभमें ही जिस प्रकारकी आपत्तियोंकी आँधी अुठी अुसे दूर करनेके लिये मैदानमें दो महारथी अुतरे—राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिंद' और राजा लक्ष्मणसिंह। 'सितारे-हिंदने' हिंदी-अुर्दूको मिलाकर अेक "आम-फहम" भाषाको महत्व देना चाहा और अुन्होंने अपने 'बनारस' अखबार द्वारा अिस प्रकारके गद्यकी सेवा की तथा अिसी शैलीमें पाठ्य पुस्तकें भी लिखीं।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिंद'की तपस्यासे हिंदीको स्कूलोंमें स्थान तो मिल गया पर अुसके स्वतंत्र अस्तित्वके खो जानेकी आशंका बनी रही। समझौते सौदेमें शायद वे आवश्यकतासे अधिक खो रहे थे, अिसी समय राजा लक्ष्मणसिंहने संस्कृतनिष्ठ हिंदीका पक्ष ले अपना 'प्रजा-हितैषी' समाचार-पत्र निकाला। संस्कृतनिष्ठ भाषाका अुदाहरण ही सम्मुख न रखकर अुन्होंने मेघदूत, शकुंतला आदिका अनुवादकर जनताको मानो यह बतला दिया कि हम जिस भाषाका समर्थन कर रहे हैं, अुसकी शब्दावलीके पीछे अिस प्रकारकी सांस्कृतिक परंपरा है।

अिन दोनों प्रकारकी चरमसीमाओंके मध्यसे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने नअी हिंदीको प्रतिष्ठित किया। वे हिंदीको अुसका निजी रूप देना चाहते थे। अुनकी भाषामें प्रधानता बोलचालके शब्दोंकी रहती थी। अुन्होंने बोलचालमें आनेवाले संस्कृत अेवं अुर्दू-फारसीके शब्दोंको तो स्थान दिया ही, पर वे राजा शिवप्रसादकी चरमसीमासे सर्वथा मुक्त रहे।

भारतेन्दुने जिस शैलीमें हिंदी-गद्यको ढाला आजका गद्य-साहित्य अुसी शैलीको परिपूर्णताकी ओर ले जा रहा है।

भारतेन्दुने हिंदीमें तीन प्रकारकी शैलियोंको जन्म दिया—भावावेशात्मक, तथ्यनिरूपणात्मक तथा व्यंग्यात्मक। भावावेशपूर्ण शैलीमें तद्भव शब्दोंके साथ-साथ छोटे-छोटे वाक्योंकी प्रमुखता रहती है; तथ्यनिरूपणकी शैलीमें विचारोंका अनुसरण करती हुअी भाषा प्रांजल बन जाती है, जिसमें संस्कृत और अुर्दू दोनोंके ही सजीव शब्द मिलते हैं। अिसके अतिरिक्त अुन्होंने व्यंग्य-विनोद-प्रधान अेक तीसरी शैली द्वारा हिंदी-गद्यमें हास्यरसात्मक साहित्यकी अवतारणा की जिसे व्यंग्य-शैली कहते हैं। आपने नाटक, निबंध, यात्रा-वर्णन आदि सभी प्रकारकी रचनाओंसे हिंदीका भंडार भरा और 'हरिश्चन्द्र-चंद्रिका', 'बालाबोधिनी' आदि अपने समाचारपत्रोंद्वारा भी जनताके मानसिक स्तरको अूपर अुठानेका प्रयत्न किया।

भारतेन्दुके पश्चात् पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, पं. बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवासदास और पं. अम्बिकादत्त व्यासने हिंदी-गद्यको विकसित करनेका प्रयत्न किया। प्रतापनारायण मिश्र हिंदीके प्रथम "परसनल-अेसे" यानी व्यक्तित्व-प्रधान निबंध-लेखक कहे जा सकते हैं। आपने 'बुढ़ापा', 'धोखा' आदि विषयोंपर सुन्दर निबंध लिखे। अुनकी भाषामें स्वच्छता, बोलचालकी चपलता, हास्य-विनोदकी प्रमुखता अेवं सजीवता है।

पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'की भाषा-शैलीमें बाणभट्टकी कादंबरीका अनुकरण-सा रहता था। पं. बालकृष्ण भट्टकी

भाषा अपेक्षाकृत अधिक प्रांजल थी। आपकी भाषामें तीखापन और चमत्कार पर्याप्त मात्रामें मिलता है।

भारतेन्दु-युगके अिन सभी लेखकोंकी यह विशिष्टता ध्यान देने योग्य है कि अिनमें मौलिकता, ज़िंदादिली और सर्वत्र भारतीयताकी छाप है।

अिसके बाद आया हिंदीका अनुवाद-युग जिसमें बंगलाके बंकिमचन्द्र, द्विजेन्द्रलाल राय तथा रवीन्द्रनाथके ग्रंथों, अंग्रेजीके शेक्स-पियरके नाटकों, और बेकनके निबंधोंके साथ-साथ संस्कृत-साहित्यके नाटकों आदिके अनुवाद भी हुअे।

हिंदी गद्य-साहित्य जिस तीव्रता और व्यापकतासे बढ़ रहा था अुस धाराको स्वच्छ कगारोंके मध्यसे संतुलित और संयमित रूपमें, जिससे जलप्लावन भी न हो और धारा जनताका मंगल-साधन भी कर सके, प्रवाहित होनेमें योगदान दिया हिंदी-गद्यके निर्माता आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदीने। आपकी कृपासे हिंदी-गद्य, व्याकरणके नियमोंमें बँधकर साधु, शिष्ट अेवं प्रांजल बन सकी। हिंदीको प्रांजलताका प्रसाद महावीरप्रसादसे ही मिला।

द्विवेदीजीने 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा ब्रजभाषा तथा खड़ी बोलीके झगड़ेको सुलझानेका जो महाप्रयत्न किया वह अिस निबंधकी सीमासे बाहरका विषय है। अुन्होंने प्रेस-अेक्ट, कॉपीराअिट, अमेरिका-अिंग्लैंडके अखबार आदि विषयोंसे लेकर भारतीय भाषाओंकी जानकारीसे जहाँ हिंदीको परिचित करानेका प्रयत्न किया, वहाँ अुन्होंने व्याकरणकी भूलोंसे बचनेका मार्ग भी प्रदर्शित किया। हिंदीके वे अपने युगके सर्वश्रेष्ठ प्रांजल शैलीकार, सजग प्रहरी और अुद्धारक थे। समालोचना अेवं निबंध-साहित्यकी प्राण-प्रतिष्ठा अेक तरहसे अुन्हींके हाथों हुअी।

द्विवेदी-युगके मध्यसे अुनसे सर्वथा पृथक्, जिन दो महा-रथियोंने हिंदी-गद्यमें चार चाँद लगानेके प्रयत्न किये वे हैं मुंशी प्रेमचंद और बाबू जयशंकर प्रसाद।

प्रेमचंदजीने हिंदी-अुर्दूकी खाअीको पाटकर न केवल हिंदीको प्रांजलता प्रदान की, अपितु अुन्होंने सैकड़ों कहानियों और लगभग अेक दर्जन अुपन्यासों द्वारा हिंदीको समस्त भारतीय साहित्यके समक्ष स्पृहणीय सिंहासनपर आसीन किया। अुनकी रचनाओंमें अुनके युगकी जनताका हास्य-रुदन, अभाव, अभियोग, अुसकी आशा-आकांक्षा ही व्यक्त नहीं हुअी है अुन्होंने अुसके संघर्ष, वर्ग-संघर्ष आदिकी भावनाको भी सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

प्रसादजीने अपनी कहानियों, नाटकों और अुपन्यासों द्वारा हिंदीकी पर्याप्त सेवा की है। अुनके अुपन्यासों तथा कुछ कहानियोंमें यद्यपि आजकी समस्याओंपर भी प्रकाश डाला गया है, तथापि अुनकी विशेषता है भारतके स्वर्णिम अतीतके दर्शन-सिद्धान्त अेवं अुसकी विचारधाराओंको तदनुकूल अैतिहासिक वातावरणमें व्यक्त कर अुसके मध्यसे वर्तमानकी विरूपताके प्रति संकेत करना। अुन्होंने जिस भाँति हिंदी-गद्यको शिष्ट, प्रांजल, अेवं संस्कृतनिष्ठ बनानेका प्रयत्न किया है वह, स्तुत्य है। वे प्रेमचंदकी तरह जीवन-संग्रामके योद्धा तो नहीं पर सजग स्वप्नद्रष्टा अवश्य थे।

रचनात्मक साहित्यमें जो स्थान प्रसाद और प्रेमचंदका है, समालोचनाके क्षेत्रमें वही बाबू श्यामसुन्दरदास और आचार्य रामचन्द्र शुक्लका है। शुक्लजीने क्रोध, लज्जा, भय आदि विषयोंपर अुत्कृष्टतम शैलीमें मनोवैज्ञानिक निबंध लिखे हैं। अुनकी 'चिंतामणि' आधुनिक गद्य (निबंध)-साहित्यकी अनुपम कृति है। आचार्य श्यामसुन्दरदासने साहित्यालोचन, भाषा-विज्ञान, रूपक-रहस्य आदि अुच्च कोटिकी आलोचनात्मक पुस्तकें लिखकर हिंदी-गद्यको परिपूर्णता दी है। अिसके अतिरिक्त अिन दोनों आचार्योंने हिंदी-साहित्यका अितिहास लिखा है तथा तुलसीदासपर दोनोंने ही विवेचनात्मक पुस्तकें लिखी हैं। साहित्यिक सेवा यदि रामचन्द्र शुक्लने हिंदीकी अधिक की है, तो अितना तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि हिंदीके मानस-क्षितिजको विस्तीर्णता देकर पाश्चात्य-पौर्वात्य आलोचना-संबंधी

सिद्धान्तोंका समीकरण करने, भाषा-विज्ञानसंबंधी साहित्यकी हिंदीमें रचना करनेवालोंमें आप अपने युगमें 'अयं प्रथमः' रहे हैं।

आजका हिंदी गद्य-साहित्य नाना रूपोंमें प्रवाहित हो रहा है। नाटक, अुपन्यास, कहानी, समालोचना, निबंध आदि आजकी सभी धाराअें अपने परिपूर्ण यौवनमें हैं। अिनमेंसे किसी अेकका भी संक्षिप्त परिचय दे पाना असंभव-सा है।

गद्यको यदि काव्यकी कसौटी माना गया है तो निबंधको गद्यकी कसौटी कहा जाता है। निबंधकारके पास न नाटककारकी तरह रंगमंचका आकर्षण है, न कविकी तरह स्वर-लयका माधुर्य, और न अुसके पास है कथाकारकी तरह 'कथाच्छलेन' जनताको मंत्रमुग्ध करनेकी विशेषता। अुसे तो अपनी बात कुछ अिस ढंगसे कहनी पड़ती है कि वह अितिवृत्तको ही शुद्ध अितिवृत्तके रूपमें आकर्षक बनाकर कुछ अिस भाँति रख दे कि लोग अुसे अुसकी मौलिकताके कारण ही पढ़नेपर विवश हो सकें।

निबंधके विवरणात्मक,व्याख्यात्मक,भावावेशात्मक या विक्षेप नामकी तीन प्रमुख शैलियोंके अतिरिक्त अेक चौथी शैली है 'पॅरसनल अेसे' या व्यक्तित्व-प्रधान शैली। विवरणात्मक या व्याख्यात्मक शैलीके निबंध तो प्रायः सभी निबंधकार लिखा करते हैं, पर व्यक्तित्व-प्रधान और भावा-वेशमयी शैलीमें सफलता प्रायः अिने-गिने व्यक्तियोंको ही मिला करती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वियोगी हरि, पांडेय बेचन शर्मा 'अुग्र', रायकृष्णदास, डा. रघुवीरसिंह आदि हिंदीमें भावावेशात्मक या विक्षेप शैलीमें गद्य-काव्य लिखनेवालोंमें प्रमुख हैं।

स्व. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, स्व. अध्यापक पूर्णसिंह, बाबू गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्रकुमार, यशपाल, अज्ञेय, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, अिलाचन्द्र जोशी, शांतिप्रिय द्विवेदी आदि हिंदीके प्रमुख निबंधकार हैं।

गुलेरीजीके निबंधोंके पीछे अुनका पुरातत्व-ज्ञान कुछ अिस

प्रकार व्यंग्य-विनोदके पुटमें रखा जाता है कि वह शुष्क पुरातत्वकी वस्तु न रहकर हृदय-संवेद्य बन जाता है। जैसेः—

"विष्णुने अग्नि, यज्ञपात्र, और अरणि रखनेके लिये तीन गाड़ियाँ बनाओं। अुनकी पत्नीने अुनके पहियोंकी चूलको घीसे आँज दिया। अुखल, मूसल, और सोम कूटनेके पत्थरों तकको साथ लिये हुअे यह कारवाँ मूंजवत् हिंदूकुशके अेक मित्र दर्रे खैबरमें होकर सिंधुकी अेक घाटीमें अुतरा। पीछेसे श्वान, भ्राज, अंभारि, बंभारि, हस्त, सुहस्त, कृशन, शंड, मर्क मारते चले आते थे। वज्रकी मारसे पिछली गाड़ी भी आधी टूट गअी, पर तीन लंबे डग भरनेवाले विष्णुने पीछे फिरकर नहीं देखा और न जमकर मैदान लिया।...."

बाबू गुलाबराय अेम. अे. के निबंधोंमें मनोविज्ञान और दर्शनका सुन्दर पुट रहता है। बीच-बीचमें वे हास्यरसका पुट भी देते जाते हैं। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदीके निबंधोंका विचार-क्षेत्र प्रगतिशील, पर अुनकी भाषाका वातावरण संस्कृत-साहित्यका रहता है। कभी कभी तो वे अपने समस्त संस्कृत साहित्यके ज्ञान और अुससे अुपलब्ध सहृदयताको, अपने आधुनिकतम विचारोंको हृदय-संवेद्य बनानेके लिये अुँडेलकर रख देते हैं।

महादेवी वर्माके निबंधोंमें, जिन्हें व्यक्तित्व-प्रधान या 'परसनल अेसे' की श्रेणीमें रखा जा सकता है, अनुपम चित्रमयता होती है। अुनके 'परसनल अेसे' अुच्च कोटिके रेखाचित्रोंमें रखे जाने योग्य हैं। जैनेन्द्रकुमारकी निबंधशैली दार्शनिकोंकी होती है, अुनकी भाषा जितनी ही साफ-सुथरी है विचार अुनके अुतने ही जटिल, पर सर्वथा मौलिक और आदर्श-प्रधान हैं।

यशपाल, अज्ञेय, ये दोनों मूलतः प्रगतिशील कथा-शिल्पी हैं, पर अिनके निबंधोंमें वर्ग-संघर्षको तीव्र कर रखनेकी जो भावना पायी जाती है, वह कभी व्यंग्य-प्रधान, कभी अन्तर्द्वन्द्व-प्रधान और कभी भावावेशमयी शैलीमें प्रकट होते हैं।

भदन्त आनन्द कौसल्यायनके निबंधोंको दो प्रकारकी श्रेणियोंमें

रखा जा सकता है। व्याख्यात्मक और व्यक्तित्व-प्रधान। यद्यपि ये कभी भी व्यक्तित्व-प्रधान शैलीमें व्याख्याका पुट देकर अुसे गंभीर बनानेका प्रयत्न नहीं करते फिर भी अुनमें विचारोंको व्यंग्यकी चाशनीमें लपेटकर, अुन्हें कुछ अिस भाँतिसे रखा जाता है कि वह अुच्चकोटिके शिष्ट व्यंग्यके साथ-साथ अुपदेशप्रद भी अपने आप हो जाता है। आपकी भाषा साफ-सुथरी, सरलतम और छटापूर्ण होती है। अुदाहरणों और अुपमाओं द्वारा वर्ण्य-वस्तुको और सजीव बना देना अिनकी विशेषता है। अिनका व्यंग्य तीखा, पर हँसानेवाला होता है।

अिलाचन्द्र जोशीके निबंधोंकी भाषा ओजस्वितासे परिपूर्ण, पांडित्य-प्रधान, पर सजीव होती है। अुसमें सर्वत्र मनोविज्ञानका पुट रहता है। शांतिप्रिय द्विवेदीके आलोचनात्मक निबंधोंमें अेक विचित्र प्रकारकी करुणा और अेक अनुपम काव्यत्वका परिचय मिलता है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायनको केवल निबंधकार ही नहीं कहा जा सकता फिर भी वे सफल निबंध-लेखक हैं। प्रतिपक्षीपर व्यंग्य कसने, तीखी शैलीमें खुलकर प्रहार करने और स्पष्टतापूर्वक अपने मनको रखनेमें किसीसे संकोच न करनेकी अुनकी प्रवृत्ति ही अुनकी विशेषता है। वे निबंधकारकी अपेक्षा अपने निबंधोंमें प्रचारक अधिक दीखते हैं; पर अुनके पीछे जो दार्शनिक और वैज्ञानिक पृष्ठभूमि रहती है और साथ-साथ जो तर्कका तूफान रहता है, अुसके संयोगसे शैली छटाशालिनी न होते हुअे भी अुनकी रचना कलात्मक बन जाती है।

यह है हिंदी-गद्यका अेक संक्षिप्त-सा परिचय, पर यह अपने आपमें अधूरा है, क्योंकि परिचय भी नहीं यह तो परिचयकी भूमिका मात्र है। अभी तो हिंदीके मैदानमें अनेकों दिग्गज दहाड़ रहे हैं, हिंदीको अपने श्रम-जलसे अभिसिंचित कर रहे हैं।

—शीलभद्र साहित्यरत्न

हम अुन सभी लेखकोंके आभारी हैं जिनकी रचनाअें अिस संग्रहमें संग्रहीत की गअी हैं।

—प्रकाशक।

आधुनिक गद्य-संग्रह

१. श्री वियोगी हरि

श्री वियोगी हरिजीके नामसे साहित्य-संसार भली भाँति परिचित है। अुनकी ठोस अेवं सुरुचिपूर्ण रचनाओंके दर्पणमें जीवनकी अजस्र धारा स्पष्ट प्रतिबिंबित है।

आपकी धर्ममाताकी मृत्युसे आपको बड़ा दुःख हुआ। अिस आन्तरिक पीड़ासे अभिभूत हो आपने अपना नाम हरिप्रसाद द्विवेदीसे बदलकर 'वियोगी हरि' रख लिया।

'अन्तर्नाद', 'वीर सतसअी', 'ठण्डे छींटे', 'मेरी हिमाक़त', 'जीवन-प्रवाह' आदि आपकी विशेष प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। 'वीर सतसअी'-पर—हिंदी साहित्य सम्मेलनके १८ वें अधिवेशनपर—'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' मिल चुका है।

'संक्षिप्त सूरसागर', 'सूरसूक्ति सुधा', 'बिहारी-संग्रह', 'बुद्धवाणी', 'विनय-पत्रिका' आदि आपके संपादित ग्रंथ हैं। अिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आपमें संपादनकी कला, मौलिकता, नवीनता तथा संकलनकी अद्‌भुत शक्ति है।

हिंदीमें गद्यकाव्यके प्रथम रचयिताओंमें आप अग्रणी हैं। गद्यमें नाद या लय अुत्पन्न करनेका श्रेय आपको है। दर्शनकी ओर विशेष रुचि होनेके कारण गद्यगीतमें भी अुसकी छाया दृष्टिगोचर होती है।

'मेरी हिमाक़त' की शैली अिनकी अपनी नूतन शैली है। अिसमें अितनी मार्मिक, साहित्यिक तथा आलंकारिक अुक्तियोंसे काम लिया है कि पढ़कर काव्यकी आत्मा रसका अनुभव 'अलौकिक आनंद'की सृष्टि करता है।

साहित्य-क्षेत्रको आपने नअी-नअी शैलियाँ दी हैं और अुसे समृद्ध बनाया है।

['श्री वियोगीहरि'—ले. मोतीलाल मालवीय 'साहित्यरत्न'से अुद्धृत।]

चित्रकारसे

चित्रकार, तुम्हारी सुकुमार अँगुलियोंमें गजबकी शक्ति है; और अुसका सदुपयोग भी तुम खूब करते हो।

तुम्हारी कुशल अँगुलियोंने दृश्य, कल्पना और कलाका बड़ा आकर्षक जाल बुना है।

तुम्हारे अिस सुन्दर जालमें फँसनेके लिअे अच्छे-अच्छे नेत्रवान् प्रतिस्पर्धा करते हैं।

प्रतिकृतिमें तुम वास्तविक आकृतिको बड़ी कुशलतासे अुतार देते हो——बल्कि कभी-कभी तो अपनी बनायी प्रतिकृतियोंको ही तुम वास्तविक समझने लगते हो, अथवा अवास्तविकके आगे वास्तविकको भूल जाते हो।

वास्तविक जगत्को सचमुच तुम चित्रपटके आगे कोई अधिक महत्व नहीं देते; तुम्हारी दृष्टिमें कलाका फलितार्थ भी यही है।

कुछ क्षणोंके लिअे जगत्के रंग-बिरंगे दृश्योंके साथ ज़रूर तुम्हारा तादात्म्य हो जाता है। तूलिका-द्वारा कागजपर अुतारकर अुन्हें तुम फिर भूल जाते हो। तुम्हारी अिस अनासक्त साधनाका जितना भी बखान किया जाये, अुतना थोड़ा है।

रेखाओं और रंगोंमें तुम अितने तन्मय हो जाते हो कि दुनिया की गति-विधिका तुम्हें भान भी नहीं रहता। वर्षाके अभावमें

खेत जब झुलसते होते हैं, तब तुम रमणीक अुद्यानों और सरोवरोंके सुन्दर दृश्य चित्रित करनेमें मग्न रहते हो। या लोगोंकी झोपड़ियाँ जब धायँ-धायँ जलती होती हैं, तब तुम अजंता और ताजमहलके चित्रांकणमें ध्यानस्थ रहते हो।

कुछ भी हो, कलाकी साधना तुम्हारी निर्बाध गतिसे चलती रहती है। कारण, तुम्हारी कला केवल कलाके लिअे होती है; स्थूल जगत्‌के साथ तो अुसका केवल चित्रगत सम्बन्ध रहता है।

तुम्हारे कला-दर्शनमें सामान्य आँख काम नहीं देती। तुम कहते हो कि पूरी खुली आँखोंसे कलाका दर्शन ठीक-ठीक नहीं हो सकता, अिसलिअे पलकोंको जरूर आधा गिरा देना चाहिअे—अर्धोन्मीलित आँख अधिक काम देती है।

पर शायद यह भी अेक ख़याल ही है। असलमें, कला-दर्शनकी आँख तो कुछ और ही आकार-प्रकारकी होती होगी।

सामान्य मानवकी खुली या अधमुँदी आँखको तुम्हारे चित्रकी आड़ी-टेढ़ी रेखाएँ विचित्र-सी ही मालूम देती हैं। तुम्हारी रहस्यमयी कलाकी क़द्र करनेवाले जिस आकृतिको सुन्दर कहते हैं, वह सामान्य आँखको विरूप और अटपटी-सी दिखाई देती है।

अुस आश्चर्य-विमूढ़ दर्शकके मनमें होता है कि अुसके सजातीय मानवकी आँखें किसी युगमें अूपरको तनी हुअी या बिल्कुल झुकी हुअी होती होंगी। अुसे चित्रके मनुष्यकी नाक भी अजीब-सी दिखती है। अुसकी पतली-टेढ़ी अँगुलियोंकी अुलझन तो अुसकी

समझमें कभी आती ही नहीं। असलमें, तुम्हारे चित्रका मानव कुछ भिन्न-सा होता है ; या कम-से-कम उसे ऐसा लगता है।

और अब तो तुम प्रकृतिके बिल्कुल समीप पहुँच गये हो। चित्रोंको निरावरण बना-बनाकर मनुष्यको तुम फिर प्रकृतिकी ओर ले जा रहे हो, जो विकासके फेरमें पड़कर संस्कृतिकी भूल-भुलैयोंमें कहां-से-कहीं भटक गया था।

सामान्य दर्शकको, जो निश्चय ही अरसिक होता है ; तुम्हारी बनायी नग्न आकृतियोंमें अश्लीलताकी गंध आती है। किन्तु धन्य है तुम्हारी प्रकृति-उपासना, कि तुम उस दर्शककी अनधिकार-पूर्ण आलोचनापर कभी ध्यान नहीं देते !

तुम्हें आश्चर्य होता है कि प्रकृति और पुरुषको, प्राचीन दार्शनिकोंकी भाँति, तुम यदि 'निरावरण' मानते हो, तो उसमें किसीको अश्लीलताकी गन्ध क्यों आये !

फिर नर और नारीकी आकृतियाँ आकाशकी तरह शून्यरूप तो हैं नहीं, जो उनपर रंग-बिरंगे बादलोंकी भाँति आवरण शोभा दें।

तुम्हारी यह शोध बिल्कुल सही है कि कला-शून्य दृष्टि ही अश्लीलता—दर्शनके नेत्र-रोग—से पीड़ित रहती है। दूषित दृष्टि-वालोंको इतना अधिक मतिभ्रम हो जाता है कि वे वास्तविक सुरा और सुन्दरीमें भी अध्यात्म देखनेका उपहास्य प्रयत्न करने लग जाते हैं।

इसी प्रकार तुम मानते हो कि नीति तो प्राकृत अवस्थाके पूर्वकी अधकची-सी कल्पना है—और यही कारण है कि तुम्हारे

किसी-किसी चित्रमें निरावरण अवस्थाकी खासी कलापूर्ण अभिव्यक्ति रहती है।

तुम्हारी तन्मयताकी तारीफ़ कहाँतक की जाये? कभी-कभी तो यहाँ तक देखा जाता है कि कागजकी तरफ़ तुम देखते भी नहीं, तुम्हारी नज़र आकाशकी ओर होती है, और तुम्हारी पेंसिल यूँ ही प्रकंपन किया करती है, पर कागजपर तुम्हारे अंतरतलकी भाव-रेखाएँ आप-ही-आप खिंच जाती हैं। तुम्हारे प्रशंसक कहते हैं कि अज्ञातरूपसे खिंची हुअी अुन अद्‌भुत रेखाओंकी अव्यक्त-सी कला अत्यन्त अुच्च कोटिकी होती है।

सामान्य आँखें अुस चित्रकलाको देखकर हँस पड़ती हैं— अैसा दीखता है, मानो किसी अबोध बच्चेने कागज और रंगको यूँ ही छोड़ दिया हो!

अुस अुपेक्षाको तो तुम स्वीकार करते हो, पर जरा दार्शनिक ढंगसे। तुम कहते हो कि कला अैसी निर्दोष और निरावरण होनी चाहिअे, जैसी कि बालककी अबोध अवस्था।

तुम शायद अुस अस्पष्ट चित्रकलाका अिस अुपमासे भी समर्थन करोगे कि मस्तिष्कके अन्दर भी तो अिसी तरहकी अन-गिनती आड़ी-टेढ़ी लकीरें खिंची हुअी हैं, पर अुनमेंसे कितना अनंत ज्ञान प्रवाहित होता रहता है।

कभी तो तुम बहुत हल्के और फीके रंगोंसे काम लेते हो, और कभी खूब गहरे और चटकीले रंगोंसे; मगर वैज्ञानिकताको तुम

दोनों ही प्रकारोंमें साबित करते हो। रंगोंके तुम्हारे सम्मिश्रणोंको हर कोअी नहीं समझ सकता। प्रत्येक सम्मिश्रणमें तुम्हारी मान्यताके अनुसार अलग-अलग रहस्य अंतर्हित होता है।

राजनेताके आगे राजनीतिक गुत्थियोंका और तत्त्ववेत्ताके सामने दार्शनिक विवादोंका जो मूल्य होता है, अुससे कहीं अधिक मूल्य तुम्हारे आगे रेखाओं और रंगोंकी समस्याओंका होता है।

अति प्राचीन कालके हिमायती कहते हैं कि तबकी चित्र-कला बहुत अधिक व्यापक थी, और अुसके अुपकरण भी अत्यंत सुगम और सरल थे।

घर-घर स्त्रियाँ पत्तोंके रससे और गोबर व मिट्टीतकसे चित्र बना लिया करती थीं। कोअी-कोअी तो तीनों लोकोंके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुरुषों तथा दृश्योंके अनदेखे चित्र भी खींचकर रख देती थीं।

अैसा शायद हुआ भी हो, पर अुन गोबर-मिट्टीके चित्रोंके पीछे न तो कोअी विज्ञान रहा होगा, न कोअी साहित्य।

अुस युगका चित्रकार कुछ वैसा ही होगा जैसा कि कवि। वैज्ञानिक कसौटीपर न तो तबका कवि कसा गया था, न चित्रकार।

अुनकी अुँगलियाँ लकीरोंको केवल खींचना ही जानती थीं, अुन्हें सोच-सोचकर सँवारना नहीं। अुनके पास रेखाओंको मिटानेका शायद कोअी साधन नहीं था। चित्र-रेखाअें तो तुम्हारी बिल्कुल सही बनती हैं, क्योंकि रबरसे तुम अुन्हें बारबार मिटाना जानते हो। तुम अपना निश्चय अनेक अनिश्चयोंके बाद बनाते हो, यही तो तुम्हारी कला-कुशलता है!

कहते हैं, जिस चित्रको तुम पूरा नहीं कर पाते, अुसे कवि पूरा कर देता है और जिसे कवि अधूरा छोड़ जाता है, अुसे तुम पूरा कर देते हो।

तुम दोनों अिसीलिअे अेक दूसरेकी सृष्टिके पूरक हो। तुम दोनोंके अुपास्य भी प्रायः अेक ही रहे—राजा और नारी, और अिन्हींका सांगोपांग साहित्य। यह अच्छा हुआ कि साधारण जन-समाज-पर तुम दोनोंकी दृष्टि नहीं गयी—यद्यपि कभी-कभी कविने अपनी लेखनीसे और तुमने अपनी तूलिकासे अुसका भी अेकाध चित्र मनोरंजनार्थ खींच डाला।

मगर अुन चित्रोंसे न तो राजमहलोंकी दीवारें अलंकृत हुआीं, न सुसंस्कृत नागरिकोंकी वाणी ही।

तुम्हारे अिस साधु-स्वभावकी कौन सराहना नहीं करेगा कि तुमने अपने कलापूर्ण हृदयमें कभी द्वेष या प्रतिहिंसाको जगह नहीं दी? 'केमरा' अचानक वज्रकी तरह गिरा और अुसने तुम्हारी नाजुक अुँगलियों और रँगीली तूलिकाको चूर-चूर कर दिया, पर अपनी आँखोंके आगे अपनी ललित कलाका विनाश देखते हुअे भी, अुसके विरुद्ध तुमने कभी अेक शब्दतक नहीं निकाला, फोटोग्राफीको तुमने कभी दानवीके रूपमें चित्रित नहीं किया।

तुमने अेक और स्तुत्य कार्य किया है। दूसरोंके लिअे तुम्हारी कला भले ही अुपयोगी न हो—यद्यपि यह बात सत्य नहीं है—पर तुमने अपने खुदके लिअे तो अुसे अुपयोगी बना ही लिया

है। तुम मानते हो कि यदि कविकी कलाको नफ़ेका पेशा बनाया जा सकता है, तो चित्रकारकी कलाको क्यों नहीं? यह कैसे हो सकता है कि जो चीज़ मनोरंजनार्थ हो, वह अर्जनार्थ न हो?

जब बढ़ओी लकड़ी छील-छालकर कमा लेता है, दर्जी सिलाओी करके, नाओी दाढ़ी मूँड़कर और किसान हल चलाकर पैदा करता है, तब चित्रकार और कविपर ही अुपार्जनका प्रतिबन्ध क्यों लगाया जाये? और फिर अुस हालतमें, जब कि बढ़ओी, दरजी, नाओी, और किसानके पेशोंसे चित्रकार और कविका पेशा मानव-जीवनके लिअे कहीं अधिक मूल्यवान् और आवश्यक है।

---

२. श्री यशपाल

यशपालकी सर्वभेदिनी दृष्टि भारतीय समाजके अनेक पत्रोंका रहस्य खोलती है। प्राचीन भारतका समाज-विधान, विलास और शोषण; ग्रामीण समाजका श्री-ह्रास; आतंक खोखलापन; शिक्षित वर्गकी लालसाअें और पराजय; अन्न-चोरोंके कुचक्र और अत्याचार; समाजकी अनेकानेक कुरीतियाँ और असंगतियाँ कलाकारकी अन्तर्दृष्टि आर-पार बेधती हैं। प्रेमचंद-सा व्यंग और अुसी महान कलाकारके अनुरूप वीभत्स सामन्ती चित्रण! यशपाल प्रेमचंदके अिंगित किये मार्गका अनुसरण कर रहे हैं। प्रेमचंदकी भाँति ही वे अपने चतुर्दिक हिलोर मारते संसारपर व्यापक दृष्टि डालते हैं। अपने अन्तस्‌में ही अुनकी प्रेरणा घुटघुटकर कुण्ठित नहीं होती।

यशपाल आतंकवादसे समाजवादकी ओर मुड़े हैं। आपका विचार-दर्शन बहिर्मुखी है। आपको बाह्य जगत्‌के प्रति आकर्षण है। अतअेव दृढ़, सुस्पष्ट रेखाओंमें आप जीवनका चित्र खींचते हैं; चटक, गहरे रंग अुस चित्रमें भरते हैं। निर्झरके स्रोत-सी आपकी प्रेरणाकी धारा बहती है।

अपनी सामाजिक प्रेरणाके अतिरिक्त यशपाल सतर्क शिल्पी भी हैं। शब्दका तोल तोलकर आप प्रयोग करते हैं। विषयके अनुसार आपकी भाषा बाना भी बदलती है। आपकी कहानियोंमें काफी तराश और पच्चीकारी है। यह हिंदीके नये लेखकोंकी जाग्रत कलात्मक चेतनाका फल है। किंतु अिस बारीक कारीगरीके पीछे लेखककी अशान्त सामाजिक चेतना है जो अुसे पलभर चैन लेने नहीं देती।

रचनाअें :- --

अुपन्यासः–दादा कॉमरेड; देशद्रोही; दिव्या; पार्टी कॉमरेड।

कहानीः–अभिशप्त; वो दुनिया; ज्ञानदान; पिंजड़ेकी अुड़ान; तर्कका तूफान; जीवनकी भस्मावृत चिनगारी।

निबंधः–मार्क्सवाद; चक्कर क्लब; न्यायका संघर्ष; सत्य और अहिंसाकी परख।

मनुष्यत्वकी हुँकार

भगवान कभी-कभी अपना आशीर्वाद अैसे बेमौक़े बरसा देते हैं कि अुससे कल्याणके बजाय संकट ही अधिक होता है। मनुष्यका कौन पाप अिस आशीर्वादरूपी दण्डका कारण होता है, सो भी वह जान नहीं पाता। अैसी अनियंत्रित कठोरता करके भी भगवान कृपालु हैं। यदि मनुष्य अैसा निरंकुश व्यवहार करे, वह कभी मनुष्यसे क्षमाकी आशा नहीं कर सकता।

बैसाखके अन्तमें जब मनुष्यके पसीने और पृथ्वीके गर्भकी अुर्वरा-शक्तिके संयोगसे खलिहानोंमें सुनहरी फसलके ढेर लगे थे, जब अभी ज़रूरत थी पच्छिमी हवाकी थपकियोंकी, जो मनुष्यकी क्षुधा-निवारण करने वाले कंचनके कणोंको भूसेके आवरणसे अलग करे, खेतीमें सहयोग देनेवाले मनुष्य और पशु अपना-अपना भाग अन्न-कणों और भूसेके रूपमें पा सकें—भगवानको ख़याल आ गया ख़सकी टट्टियोंके पीछे दुबक, खसका अित्र मल, खसखसकी ठण्डाअीके लिअे व्याकुल होनेवालों का।.......बरस पड़े ओलों और गहरी बौछारोंमें।

दार्शनिक बेचारेकी शामकी महफ़िल गअी। भीगी बेंचों और पानी भरी घासपर बैठकर बहस करने कौन आता? अिसलिअे जब गरमीके कारण अजीर्णसे दुख पाने वाले सज्जन भगवानके बेमौक़ा आशीर्वादके प्रति धन्यवाद देनेके लिअे, ताड़ीके चुक्कड़ और सोडे ह्विस्कीके पेग और गज्जककी चिन्ता कर रहे थे; किसान फसलपर गिरी गाजसे स्तब्ध हो लगानके लिअे घरवालीके

खडुअे रेहन रखनेकी चिंता कर रहे होंगे, दार्शनिक अपने अपने सींक-से रूखे बालोंको शीतल हो गअी हवामें फहराते हुअे निकल पड़े, बंजरके मैदानकी विस्तीर्ण शीतलतामें लम्बे और मुक्त श्वास लेनेके लिअे।

प्यासी धरतीकी दराज़ोंमें जल जानेसे अुसने अुगल दिअे करोड़ों ही जीव-जन्तु। अेक पुराने बामीकी जड़से अरबों दीमक, अपने शरबती शरीरोंमें, धाराओंकी भाँति अुमड़ रहे थे। कुछ ही क़दम पर अुसी असंख्य संख्यामें काले रंगकी चींटियोंके दल दूसरी बामीसे निकल अुनपर घोर आक्रमण करने लगे। अेक कल्पनातीत, भयंकर संग्राममें असंख्य सफेद और काली चींटियोंका संहार होने लगा। सफेद और काली रणमत्त चींटियोंके दल शत्रु पक्षके टुकड़े-टुकड़े कर भीगी पृथ्वीको ढँकने लगे।

दार्शनिक सोचने लगा—यह सब क्यों? अुसी समय मनके संस्कार बोल अुठे, शायद सफ़ेद चींटियोंको अुपनिवेशोंकी आवश्यकता है या अुन्हें काली चींटियोंके भिटेमें जमा खाद्य पदार्थोंकी जरूरत है। काली चींटियाँ प्राण रहते अपनी भूमि और खाद्य-भण्डारकी ओर किसीकी दृष्टि सहन नहीं कर सकतीं।........कितनी धरती और कितना खाद्य पदार्थ अिन दोनोंही प्रकारकी चींटियों के लिअे सृष्टिमें भरा पड़ा है। यदि यह चींटियाँ अपनी शक्ति दूसरी चींटियों-के शरीरके टुकड़े करनेमें व्यय न कर, नअी बामी बनाने और खाद्य पदार्थके नये भण्डार संचय करनेमें व्यय करें तो यह दोनों ही दल कितने सुखी हो सकते हैं?

चींटियोंकी अिस मूर्खतासे उद्विग्न हो, अुनकी भलाअीके लिअे दार्शनिकके मुखसे परस्पर-प्रेम, सेवा-भाव और हृदय-परिवर्तनके अुपदेश-स्वरूप अेक व्याख्यान आरम्भ होनेको ही था कि समीप ही अेक बड़े अहातेके फाटकको सँभाले, अींटोंके खम्भेपर चिपके, हवामें फर-फराते, बड़े अिश्तहारमें जनतासे अपील थी—अपने जानोमालकी रक्षाके लिअे, अपने देशकी रक्षाके लिअे जंगमें अिमदाद देनेकी।

मानो दार्शनिककी आँखोंके सामनेका दृश्य जादूकी छड़ीके स्पर्शसे बदल गया। रणांगनमें जूझती अुन करोड़ों चींटियोंके स्थानमें अुसे दिखाअी देने लगे अुतने ही नर-शरीर। शीतल वायुके स्पर्शसे अुत्साह पा दार्शनिककी कल्पना और भी प्रखर और गहरी हो अुठी। युद्धमें जूझते असंख्य मनुष्योंके साथ ही अुसे दिखाअी देने लगे----टैंक, तोपोंकी गाड़ियाँ, जो सौ मीलपर गोला फेंककर प्रलय-काण्ड करती हैं; मृत्युकी वर्षा करनेवाले हवाअी जहाज़, जिन्हें कोअी प्राकृतिक आड़ रोक नहीं सकती। अिस मृत्युको रोक सकता है, मनुष्यका ही प्रयत्न और मृत्युकी अिस शक्तिकी सृष्टि भी मनुष्य ही करता है। दार्शनिकके दिमागमें घूमने लगी—मनुष्यके प्रयत्नकी असीम शक्तिकी बात। अपने आपको तुच्छ समझनेवाले मनुष्यके प्रयत्नकी शक्ति कितनी असीम है!

अुसे याद आने लगी हालमें किसी अखबारमें पढ़ी अेक खबर.......ब्रिटेनका हवाई बेड़ा कअी करोड़ मीलका चक्कर युद्ध आरम्भ होनेके समयसे अबतक लगा चुका है। लगभग अुतने ही करोड़ मीलका चक्कर जर्मनीके हवाअी बेड़ेने भी ज़रूर लगाया

होगा। और रूसका हवाओी बेड़ा; अमेरिकाका हवाओी बेड़ा; जापानका हवाओी बेड़ा; और कितने ही देशोंके हवाओी बेड़े! अिन सब बेड़ोंकी शक्ति?........कितने ही सैकड़ों-अरब मीलका चक्कर अिन हवाओी बेड़ोंने मिलकर लगाया होगा! संसारभरकी मनुष्य-संख्या है कितनी? यही करीब-करीब अेक अरबसे कुछ ज़्यादा!

दार्शनिकको विस्मय होने लगा—यदि मनुष्य द्वारा बनाये गअे अिन हवाओी जहाज़ोंकी शक्ति केवल मनुष्यको मारनेके प्रयत्नमें और मनुष्य द्वारा की जानेवाली चोटसे बचाव करनेमें खर्च न होती तो संसारके प्रत्येक मनुष्यके लिअे सम्भव था कि सैकड़ों मील हवाओी जहाज़की सैर कर सकता। और दार्शनिकका हाल यह है कि जब पेट भरनेकी चिन्ता अुसे जेठकी दुपहरीमें, तपती सड़कपर दो मील दौड़ाती है तब लंगड़ाते अिक्के या साअिकिलतककी सवारी अुसे मयस्सर नहीं होती! यह क्या मनुष्य नहीं? क्या मनुष्यकी अिस विशाल शक्तिमें अुसका कोअी भाग या अधिकार नहीं?........मनुष्यकी यह विशाल शक्ति अब तक थी कहाँ? अप्रत्यक्षके किस गर्भमें यह छिपी पड़ी थी? ठीक वैसे ही जैसे यह सैकड़ों-करोड़ काली और सफेद चींटियाँ वर्षासे पूर्व छिपी रहकर भी मौजूद थीं, अुसी प्रकार मनुष्यकी शक्ति भी........।

मनुष्यकी शक्ति, और अुसका सामर्थ्य क्या केवल हवाओी जहाज़ोंकी गिनती और अुड़ानतक ही सीमित है? मनुष्यकी शक्ति और सामर्थ्यको जाना जा सकता है अुसके कामोंसे, रुपयेके मूल्यमें। एक तोप, टैंक या हवाओी जहाज़की क़ीमत क्या होगी?

कर्अी लाख रुपये! कितने परिश्रमसे लाख तोपें, टैंक और हवाअी जहाज अिस युद्धमें बनाअे या बिगाड़ जा चुके हैं; अुनका हिसाब मुश्किल है। पर कितने अरब रुपये या कहिअे कितने मूल्यकी मनुष्य-की मेहनत—हमारी बहादुर सरकार अिस युद्धमें रोज़ाना खर्च कर रही है, अुसका हिसाब अखबार और रेडियो-प्रचारसे जाननेको खूब मिलता है। फिर वही बात कि अुतने ही अरब रुपयेकी मेहनत प्रतिदिन जर्मनी, अमेरिका, रूस, जापान सभी खर्च कर रहे होंगे। सब मिलाकर प्रतिदिन सैकड़ों अरब रुपयोंका खर्च। लेखा लगाने-से संसारके प्रति मनुष्यके हिसाबसे लाखों ही रुपये खर्च हो चुके और हो रहे हैं। यदि अितने मूल्यके परिश्रमसे दार्शनिक या अुस जैसोंकी अवस्था सुधारनेकी बात सोची जा सकती?

यह दूसरी बात है कि दार्शनिक साहब खुश्क रोटी और पानीमें अुबली दाल खाकर भी ढाबेका बिल प्रति मास सहूलियतसे चुका पाते। जूतेकी सीवन अुखड़ जानेपर मरम्मतके लिअे और गलीके कोनेपर पनवाड़ीके यहाँसे ली गअी बीड़ीका उधार चुकता करनेमें अुनके सामने बजटकी कठिनाअियाँ आ जाती हैं। यह दूसरी बात है कि हज़ारों-लाखों मनुष्य दार्शनिकके चारों ओर अैसे हैं जो पेटभर अन्न और लज्जा ढाँकनेके लिअे कपड़ेका माकूल चिथड़ा भी नहीं पा सकते। बड़े साहबके कुत्तेके भाग्यसे अीर्ष्या करनेवाला दार्शनिक अुनके सामने सम्पन्न और सम्मानित बाबूके रूपमें अकड़-कर चल सकता है; परन्तु संसारके जमा-खर्चकी बहीमें अुन सबके नामसे भी हजारों ही रुपया अुनके हितों और अधिकारोंकी रक्षाके लिअे प्रजातन्त्रके नाम नित्य खर्च हो रहा है?

संसारकी दृष्टिमें चाहे दार्शनिकके व्यक्तित्वका मूल्य कुछ भी न हो! शायद वह अुतना ही नगण्य हो जितनी कि हज़ारों और लाखोंकी संख्यामें मरनेवाली सफ़ेद और काली चींटियाँ। जो भी हो, दार्शनिकके दिमागमें अेक अभिमान और ख़याल समाया हुआ है; वह है—मनुष्य होनेका दावा!

अिस दावेके दुस्साहससे वह समझता है कि संसार और समाजके प्रति अुसकी कुछ जिम्मेदारी है और संसार और समाज-पर अुसका भी कुछ दावा है। कमसे कम अुतना, जितना कि संसारकी मनुष्य-गणनामें अुसका अंश है। संसारकी मनुष्य-गणनाका अितना क्षुद्र अंश होनेके नाते शायद अुसका कुछ भी मूल्य न हो। अिसलिअे अपने ही जैसे दूसरे मनुष्योंको अपने साथ मिलाकर वह अेक सबल रस्सी बन जाना चाहता है। संसारकी व्यवस्थाके निरंकुश होते हुअे हाथीको अिस रस्सीसे बाँधकर वह "मनुष्य" के जीवनको जीने योग्य बनानेकी कल्पना करता है। अिस रस्सीको वह समाजवादका नाम देता है। दार्शनिककी कल्पना है—समाजकी व्यवस्थाका हाथी पुरानी आर्थिक, राज-नैतिक और सामाजिक व्यवस्थाकी साँकलोंके बोसीदा होकर कुड़मुड़ा जानेसे विशृंखल हो गया है। अिसलिअे वह युद्धके रूप-में अुन्मत हो, मनुष्य समाजके सब करे-धरेको अपने विनाशके पैर-के नीचे कुचले डाल रहा है।

मनुष्यके प्रयत्न, अुसकी शक्ति और सामर्थ्यके अनुपातको अिस युद्धमें होने वाले विनाशके रूपमें पहचान, मनुष्य होनेके दावेसे

दार्शनिकका माथा गर्वसे अितना अूँचा हो जाता है कि अुसका शेष शरीर पृथ्वी पर न जाने कहाँ अकिंचन रूप पड़ा रह जाता है। परन्तु पृथ्वीसे परे कहीं अुड़ जाकर तो जीवन नहीं चल सकता ! अिसलिये जीवनकी वास्तविकता अुसे फिर पृथ्वीपर खींच लाती है। अिस पृथ्वीपर लौट जब अुसकी विचार-शक्ति देखती है—मनुष्य का प्रयत्न और शक्ति अुसके अपने विनाशमें ही लगी है, तो मनुष्य होनेके दावेके नाते वह लज्जासे पृथ्वीमें गड़ जाता है।

मनुष्य अपनी शक्ति और सामर्थ्यका अुपयोग ठीकसे नहीं कर पाता और अपना नाश करने लगा है। मनुष्यकी यह शक्ति और सामर्थ्य अुसपर चोट न कर, जीवनकी सहूलियतें पेश करे, अिस अुद्देश्यसे दार्शनिक मनुष्यकी शक्ति और सामर्थ्यकी व्यवस्था अिस प्रकार करना चाहता है कि मनुष्य-समाजके भिन्न-भिन्न अंश 'पूँजी' के पंजोंसे अेक-दूसरेको नोचना और चूसना छोड़ संपूर्ण समाजको सम्पन्न बना सकनेके ढंगपर आ जायँ। अिसीको वह समाजवाद कहता है।

अिस सुख-कल्पनामें अुसे दीखने लगता है—संसार-भरका मनुष्य-समाज श्रेणी, नस्ल जाति और देशोंके रूपमें अपनेको बाँटकर, अेक-दूसरेके नाश और शोषण द्वारा जीवनके प्रयत्नोंको छोड़, परस्पर सहयोगसे जीवनके तरीक़ेपर चलने लगेगा। तब मनुष्यका परिश्रम विनाशक तोपें, टैंक, जंगी जहाज और गोला-बारूद बना, आत्महत्या करनेके बजाय अपनी भूख मिटाने, शरीर ढाँकने और दूसरी आवश्यक चीज़ें पैदा करनेके काममें लग जायगा।

तब अेक-दूसरे को शत्रु समझ परस्पर भयभीत और आशंकित रहनेवाले सब देशोंमें भरे पड़े सिपाही नामधारी मनुष्य-पशुओंकी ज़रूरत न रहेगी। स्वयम् अपनी व्यवस्थाके कारण सदा भयभीत रहनेवाला मनुष्य-समाज अपनी रक्षा कर पानेके प्रयोजनसे अिन्हें लड़ाकू मेढ़ोंकी तरह पालता है। समाजका अंग-भंग करनेके अलावा कोअी दूसरा अुपयोगी काम यह लोग नहीं करते। जब ज़बरदस्ती हिंसक बनाकर रखे जानेवाले यह जीव भी समाजके अुपयोगी कामोंमें जुट जायँगे, तब मनुष्य-समाज कैसा सुखी हो जायगा! तब दार्शनिकको, शक्ति और सामर्थ्य होते हुअे भी, अुपयोगी काम करनेका अवसर न मिलनेके कारण बेकार और बेरोजगार न रहना पड़ेगा। तब व्यक्ति या दल राज नहीं करेंगे। राज करेगा समाज! दार्शनिक समाजवादके अिस खयालमें मस्त होकर बेखुद-सा हो गया। अुसी समय अपने पाँवमें दो-अेक चींटियोंके दाँतोंकी आज़माअिश करनेसे अुसका ध्यान वास्तविकता-की ओर लौट आया। दिखाअी देने लगा——अेक बड़ा युद्ध, विनाशक युद्ध, जो मनुष्य-समाजको कोल्हूमें डाली गयी अीखकी तरह निचोड़ ले रहा है?.........क्यों?.........मनुष्य समाजकी व्यवस्थाको सही राहपर लानेके लिअे! शायद अिस विश्वाससे मनुष्यकी जीवन-शक्ति और अुत्पादन-शक्ति आवश्यकतासे बढ़ गअी है।

मनुष्य-समाजके लिअे सही व्यवस्थाका सवाल ही तो सबसे टेढ़ा प्रश्न है। मनुष्य-समाजके लिअे अेक सही व्यवस्थाकी स्थापना दार्शनिक भी करता है। दार्शनिक अपनी अनेक बेढंगी

कल्पनाओंके लिअे मौलिकताका दावा कर सकता है परन्तु समाजकी अिस नअी व्यवस्थाकी कल्पनाके लिअे अैसा दावा वह नहीं कर सकता। प्रकृति और समाजको छोड़ कल्पना या प्रेरणा लेनेका कोअी साधन असके पास नहीं। असकी अिस कल्पनाका आधार है—समाजका युग-युगका अनुभव और जीवित रहनेकी चेष्टा। जीवनकी प्रेरणा ही मनुष्य-समाजके शरीरको अिस कल्पनाकी ओर अग्रसर कर रही है। समाजका निस्सत्व होता शरीर अिस कल्पना-द्वारा जीवन-निर्वाहके स्रोतोंको विनाशसे बचाना चाहता है।

अपनी व्यवस्थामें परिवर्तन लानेके लिअे समाजका यह प्रयत्न पुरानी व्यवस्थाकी मालिक शक्तियोंको पसन्द नहीं........। यह शक्तियाँ अपनी व्यवस्थाके हाथीको अपने मनसे चलानेके लिअे जनताके खेत अजाड़ डालती आअी हैं। नअी व्यवस्थामें अपने पुराने ही ढंगपर डटी रहना चाहती हैं। नअी व्यवस्थामें अपने पुराने अधिकार हाथसे निकलते देख, अिन्हें अपना अन्त दिखाअी देने लगता है। अपने अधिकारमय जीवनकी रक्षामें ही वे समाजके जीवनकी भी रक्षा समझते हैं।

अधिकारी श्रेणीकी प्रभुताका वह स्वर्णकाल ही अन्हें शान्ति-व्यवस्था, न्याय, धर्म और रामराज्यका आदर्श जान पड़ता है। अधिकार और अपनी विशेषताको खोकर आम जनतामें—अस आम जनतामें, जो केवल अपयोगमें आनेवाले पशुओंके समान है—मिल जाना अन्हें मनुष्य-समाजके पशु और बर्बर बन जानेके समान जान पड़ता है। मनुष्यत्वका अर्थ अनकी दृष्टि में है—अनकी

अपनी श्रेणीका राज! यह नया मनुष्यत्व विशाल और विस्तीर्ण आधार-पर अुठनेवाले वृक्षकी भाँति बहुत अूँचा जायगा।

दार्शनिकका विचार है—मनुष्यकी शक्तिके विकासके साथ ही अुसके हाथ-पाँव लंबे हो गअे हैं। पुरानी संकीर्ण सीमाओंमें रहकर अुसका निर्वाह नहीं। मनुष्यके हाथ-पैर छोटे होनेकी अवस्थामें जो अुसका धर्म और आदर्श था, वह धर्म और आदर्श अब अुसका नहीं रह सकता। जब मनुष्यत्वकी पहुँच सीमित थी, परिवार अुसका आदर्श था। दूसरे परिवारको वह शत्रु समझता था और अपने परिवारके लिअे मर मिटना अुसका धर्म था। मनुष्यत्वकी सीमा बढ़नेपर, समाजके शरीरका आयतन बढ़नेपर, मनुष्य अपने परिवारको देशपर बलिदान कर देता है। और फिर मनुष्यकी पहुँच और शक्तिके अनुपातमें अुसके देशकी सीमा भी बढ़ती जाती है गांवसे ज़िले, ज़िलेसे प्रान्त और प्रान्तसे देशकी ओर। तब देशको लाँघकर वह पृथ्वी और संसार-भरमें फैल गया है।

आज कोअी भी देश दूसरे देशोंसे अलग रहकर अकेला जीवित नहीं रह सकता। अैसी अवस्थामें देशभक्तिके भावसे दूसरे देशोंसे झगड़ा, आत्महत्याके अतिरिक्त और क्या है? दार्शनिकका विचार है, सीमित राष्ट्रीयता और देशभक्ति मनुष्यकी पूँजीवादकी आयुका आदर्श था और अुस समय अुसका पराक्रम था—साम्राज्य-वाद!—अपने देश और राष्ट्रको बलवान बनाकर, दूसरे देशों और राष्ट्रोंको शत्रु समझ अुन्हें शिकार बनाना।

आज मनुष्य-समाज बालिग़ हो गया है और अुसका आदर्श है—सम्पूर्ण संसार अेक समाज है।

बालिग होकर मनुष्य-समाजने आज पहली बार अपने आपको "मनुष्य" के रूपमें पहचाना है। अबतक वह अपने आपको परिवार, जाति, राष्ट्र, देशके मनुष्यों और साम्राज्यके संकीर्ण रूपोंमें ही समझता आया है। अब अुसने कहना सीखा है— "संसारके मनुष्य !"

मनुष्यत्वका आधार है, अुसके जीवनका सामर्थ्य—अुसका परिश्रम ! अिसलिअे बालिग और सचेत मनुष्यने अपने आपको पहचानकर पहली बेर हुँकार की है—"संसारके परिश्रम करनेवालो अेक हो जाओ।"

संसारका कौन मनुष्य है जो मनुष्यकी अिस भावनाका विरोध कर सकता है ? कौन है जो परिश्रम किअे बिना जीना चाहता है········? जो मनुष्य नहीं बनना चाहता, अुसका अिलाज ?

पुरानी व्यवस्थाके बलसे दूसरोंके पेटपर हाथी नचानेके वे शौक़ीन, जो साधारण मनुष्य बन जानेके अपमानसे मर मिटना बेहतर समझते हैं, जो शेष संसारको अपना शिकार और शत्रु समझ अपने राष्ट्रके साम्राज्यके रूपमें अपनी शक्तिका नशा क़ायम रखनेके लिअे संसारको रक्तका स्नान करा अपने लिअे योग्य बनाअे रखना चाहते हैं, अिस नअी व्यवस्थाके विरुद्ध जी-जानसे लड़नेके लिअे तैयार हैं। अपने देश और राष्ट्रको, संसारकी प्रभुता और सम्राट् बननेकी कल्पनाका मद पिला, सम्पूर्ण संसारके सीनेमें अपनी लौहमय अेड़ी गड़ा, अपने पैरके नीचे सम्पूर्ण संसारको कुचला हुआ सिसकता देखनेकी अिच्छा पैदा कर जो लोग अपने निरंकुश शासनका

अधिकार क़ायम रखना चाहते हैं, अुनकी दृष्टिमें मनुष्य और मनुष्यताका मूल्य कुछ भी नहीं। वे कहते हैं—मनुष्यके प्राण बचानेवाली रोटीसे अुसके प्राण लेनेवाली बन्दूककी गोली अधिक अच्छी है........।*

संसार-भरको अपनी लौहमय अेड़ीके नीचे दबा देनेका स्वप्न, संसार-भर मनुष्योंके विरुद्ध, मनुष्यत्वको कुचल डालनेकी ललकार है; दलितों और पीड़ितोंके हृदयमें अुगते, मनुष्यत्वका अधिकार पानेके, अरमानको कुचल डालनेका गुरूर है.......... निर्बलोंके भविष्यका अन्त है।

अपने राष्ट्रके साम्राज्यके रूपमें अपने दलकी निरंकुशता तानाशाही क़ायम करनेके लिअे संसार-भरकी मनुष्यताको कुचल डालनेका यह गुरूर दूसरोंकी राष्ट्रीयतासे टक्कर दिये बिना कैसे रह सकता था? और सबसे बढ़ कर, मनुष्य मात्रके लिअे समान अधिकारका दावा करने वाले, मनुष्यको राष्ट्रीयताकी संकीर्णतासे निकाल कर केवल "मनुष्य" बनानेका यत्न करनेवाले समाजवादको वह अपना बीजनाश करनेवाला शत्रु समझे बिना कैसे रह सकता था?

प्राचीन व्यवस्थाकी नींवपर, प्राचीनैतिकताके बलपर, पुराने खुदाकी शाहसे स्वामी बने रहकर, शोषणका अपना अधिकार बनाये रखनेकी चेष्टा करनेवाले चाहे वे तोप तलवारका जोर दिखायें, चाहे वे प्रेम-सेवा—अहिंसाका ढोंग रचें, वे जनताको स्वयम् अपना राजा बनता फूटी आँखों नहीं देख सकते। समाजिकता और समाजवाद अुन्हें सदा ही अन्याय और हिंसा जान पड़ेगी।

* 'Gun's are better than butter'—Goebles.

अपने आपको मनुष्य समझनेका दावा करनेवाला, मनुष्यताकी हुँकार—'संसारके मेहनत करनेवालो (मनुष्यो) अेक हो जाओ' —से अभिमान करनेवाला दार्शनिक, मनुष्यता पर होनेवाले अिस भैरव आक्रमणके प्रति अुदासीन कैसे रह सकता है?

वह अनुभव करता है—मनुष्य बन सकनेकी इच्छा करनेवाले, पीड़न, शोषण और दमनका विरोध करनेवाले, चाहे जहाँ कहीं भी हों, संसारकी मनुष्यतामें अपनी रक्षा समझनेवाले, चाहे जिस जगह भी हों, मनुष्यत्वपर अिस बलात्कार और क़त्लको सहन नहीं कर सकते। जीवित रहनेका अधिकार, मनुष्यत्वका आदर्श और महत्वाकांक्षा सजग और सक्रिय हो जानेके लिअे अुन्हें ललकार रही है।

पैरमें काटनेवाली चींटीसे अधिक व्याकुल कर दिया दार्शनिकको मनुष्यत्वपर आ रही चोटकी पीड़ाने।

अपने साधनहीन दोनों हाथ मलकर वह सोचने लगा— "साधनोंके बिना भी मनुष्य 'मनुष्य' है?"

अपने असमर्थकी ग्लानिमें वह केवल यह निश्चय कर रह गया—

"प्राण जानेपर भी मनुष्यत्वके आदर्शको वह न छोड़ सकेगा,......................व्यक्तिके मिट जानेपर भी मनुष्यत्व बना रहेगा,........मनुष्यत्व विजयी हो पृथ्वी-भरपर फैलेगा!........ चिरंजीवी हो मनुष्यका 'मनुष्यत्व'।........मनुष्यकी सामाजिक भावना!"

---

३. स्व. आचार्य रामचंद्र शुक्ल

हिंदीके सर्वश्रेष्ठ आलोचक, गंभीर विद्वान् और विचारशील लेखक पं. रामचंद्र शुक्लकी विशेषता अुनकी मौलिकता है। अुन्होंने क्रोध, करुणा, अुत्साह, घृणा, श्रद्धा आदि मनोविकारोंपर बड़े सुंदर लेख लिखे हैं। अिनका संग्रह 'चिंतामणि' नामसे प्रकाशित हुआ है, 'जिसपर हिंदी साहित्य सम्मेलन' से १२००) का पुरस्कार मिला था। जायसी, सूर और तुलसीपर लिखी हुअी अुनकी आलोचनाअें अत्यंत अुच्च कोटिकी हैं। अुनका हिंदी साहित्यका अितिहास' कदाचित् सर्वश्रेष्ठ और अनूठा है। अिसपर अुन्हें 'हिंदुस्तानी अेकेडमी, प्रयाग' की ओरसे ५००) का पुरस्कार मिला था।

मनोविकारोंपर लेख लिखनेका प्रयास सर्वप्रथम शुक्लजीने ही किया था। अिनके लिअे अुन्होंने जिस शैलीको अपनाया वह अुनकी साहित्यिक शैलीसे कुछ भिन्न है। अिसमें वाक्य तो वैसे ही छोटे छोटे हैं, जिससे विषय सुबोध और स्पष्ट हो जाता है, शब्द-योजनामें भी विशेष अन्तर नहीं है; परंतु विषयकी स्वच्छंदताके कारण भाषाके जिस प्रचलित और व्यावहारिक रूपको अपनाया गया है, अुससे भाव-व्यंजनामें जो प्रवाह परिलक्षित होता है वह अुनकी अिस शैलीकी विशेषता है।

रचनाअें :— जायसी, सूर, तुलसीपर लिखी आलोचनाअें; काव्यमें रहस्यवाद; हिंदी साहित्यका अितिहास; चिंतामणि; बुद्ध-चरित्र (काव्य)।

क्रोध

क्रोध दुःखके चेतन कारणके साक्षात्कार या अनुमानसे अुत्पन्न होता है। साक्षात्कारके समय दुःख और अुसके कारणके सम्बन्धका परिज्ञान आवश्यक है। तीन चार महीनेके बच्चेको कोअी हाथ अुठाकर मार दे तो अुसने हाथ अुठाते तो देखा है पर अपनी पीड़ा और अुस हाथ अुठानेसे क्या सम्बन्ध है, यह वह नहीं जानता है। अतः वह केवल रोकर अपना दुःखमात्र प्रकट कर देता है। दुःखके कारणकी स्पष्ट धारणाके बिना क्रोधका अुदय नहीं होता। दुःखके सज्ञान कारणपर प्रबल प्रभाव डालनेमें प्रवृत्त करनेवाला मनोविकार होनेके कारण क्रोधका आविर्भाव बहुत पहले देखा जाता है। शिशु अपनी माताकी आकृतिसे परिचित हो जानेपर ज्योंही यह जान जाता है कि दूध अिसीसे मिलता है, भूखा होनेपर वह अुसे देखते ही अपने रोनेमें कुछ क्रोधका आभास देने लगता है।

सामाजिक जीवनमें क्रोधकी जरूरत बराबर पड़ती है। यदि क्रोध न हो तो मनुष्य दूसरोंके द्वारा पहुँचाये जानेवाले बहुतसे कष्टोंकी चिर-निवृत्तिका अुपाय ही न कर सके। कोअी मनुष्य किसी दुष्टके नित्य दो-चार प्रहार सहता है। यदि अुसमें क्रोधका विकास नहीं हुआ है तो वह केवल आह-अूह करेगा, जिसका अुस दुष्टपर कोअी प्रभाव नहीं। अुस दुष्टके हृदयमें विवेक, दया आदि अुत्पन्न करनेमें

बहुत समय लगेगा। संसार किसीको अितना समय अैसे छोटे-छोटे कामोंके लिये नहीं दे सकता। भयभीत होकर भी प्राणी अपनी रक्षा कभी-कभी कर लेता है, पर समाजमें अिस प्रकार प्राप्त दुःख-निवृत्ति चिरस्थायिनी नहीं होती। हमारे कहनेका अभिप्राय यह नहीं है कि क्रोधके समय क्रोध करनेवालेके मनमें सदा भावी कष्टसे बचनेका अुद्देश्य रहा करता है। कहनेका तात्पर्य केवल अितना ही है कि चेतन सृष्टिके भीतर क्रोधका विधान अिसीलिये है।

जिससे अेक बार दुःख पहुँचा, पर अुसके दुहराअे जानेकी सम्भावना कुछ भी नहीं है, अुसको जो कष्ट पहुँचाया जाता है वह प्रतिकारमात्र है, अुसमें रक्षाकी भावना कुछ भी नहीं रहती। अधिकतर क्रोध अिसी रूपमें देखा जाता है। अेक-दूसरेसे अपरिचित दो आदमी रेलपर चले जा रहे हैं। अिनमेंसे अेकको आगे ही के स्टेशनपर अुतरना है। स्टेशनतक पहुँचते-पहुँचते बात ही बातमें अेकने दूसरेको अेक तमाचा जड़ दिया और अुतरनेकी तैयारी करने लगा। अब दूसरा मनुष्य भी यदि अुतरते-अुतरते अुसे अेक तमाचा लगा दे तो यह अुसका बदला या प्रतिकार ही कहा जायगा, क्योंकि अुसे फिर अुसी व्यक्तिसे तमाचे खानेका कुछ भी निश्चय नहीं था। जहाँ और दुःख पहुँचनेकी कुछ भी सम्भावना होगी वहाँ शुद्ध प्रतिकार न होगा, अुसमें स्वरक्षाकी भावना भी मिली होगी।

हमारा पड़ोसी कअी दिनोंसे नित्य आकर हमें दो-चार टेढ़ी-सीधी सुना जाता है। यदि हम अेक दिन अुसे पकड़कर पीट दें तो हमारा यह कर्म शुद्ध प्रतिकार न कहलायेगा, क्योंकि हमारी

दृष्टि नित्य गालियाँ सहनेके दु:खसे बचनेके परिणामकी ओर भी समझी जायगी। अिन दोनों दृष्टान्तोंको ध्यानपूर्वक देखनेसे पता लगेगा कि दु:खसे अुद्विग्न होकर दु:खदाताको कष्ट पहुँचानेकी प्रवृत्ति दोनोंमें है; पर अेकसे वह परिणाम आदिका विचार बिलकुल छोड़े हुअे है और दूसरेमें कुछ लिये हुअे। अिनमेंसे पहले दृष्टान्तका क्रोध अुपयोगी नहीं दिखाअी पड़ता। पर क्रोध करनेवालेके पक्षमें अुसका अुपयोग चाहे न हो, पर लोकके भीतर वह बिलकुल खाली नहीं जाता। दु:ख पहुँचानेवालेसे हमें फिर दु:ख पहुँचानेका डर न सही, पर समाजको तो है। अिससे अुसे अुचित दण्ड दे देनेसे पहले तो अुसीकी शिक्ष्या या भलाअी हो जाती है, फिर समाजके और लोगोंके बचावका बीज भी बो दिया जाता है। यहाँपर भी वही बात है कि क्रोधके समय लोगोंके मनमें लोक-कल्याणकी यह व्यापक भावना सदा नहीं रहा करती। अधिकतर तो अैसा क्रोध प्रतिकारके रूपमें ही होता है।

यह कहा जा चुका है कि क्रोध दु:खके चेतन कारणके साक्षात्कार या परिज्ञानसे होता है। अत: अेक तो जहाँ कार्य्य-कारणके सम्बन्ध-ज्ञानमें त्रुटि या भूल होती है वहाँ क्रोध धोखा देता है। दूसरी बात यह है कि क्रोध करनेवाला जिस ओरसे दु:ख आता है अुसी ओर देखता है; अपनी ओर नहीं। जिसने दुख पहुँचाया है अुसका नाश हो या अुसे दु:ख पहुँचे, क्रुद्धका यही लक्ष होता है। न तो वह यह देखता है कि मैंने भी कुछ किया है या नहीं और न अिस बातका ध्यान रखता है कि क्रोधके वेगमें मैं जो कुछ करूँगा अुसका

परिणाम क्या होगा। यही क्रोधका अन्धापन है। अिसीसे अेक तो मनोविकार ही अेक-दूसरेको परिमित किया करते हैं; अूपरसे बुद्धि या विवेक भी अुनपर अंकुश रखता है। यदि क्रोध अितना अुग्र हुआ कि मनमें दुखदाताकी शक्तिके रूप और परिणामके निश्चय, दया-भय आदि और भावोंके सञ्चार, तथा अुचित अनुचितके विचारके लिये जगह ही न रही तो बड़ा अनर्थ खड़ा हो जाता है। जैसे यदि कोअी सुने कि अुसका शत्रु बीस-पचीस आदमी लेकर अुसे मारने आ रहा है और वह चट क्रोधसे व्याकुल होकर बिना शत्रुकी शक्तिका विचार और अपनी रक्षाका पूरा प्रबन्ध किये अुसे मारनेके लिये अकेले दौड़ पड़े तो अुसके मारे जानेमें बहुत कम सन्देह समझा जायगा। अतः, कारणके यथार्थ निश्चयके अुपरान्त, अुसका अुद्देश्य अच्छी तरह समझ लेनेपर ही, आवश्यक मात्रा और अुपयुक्त स्थितिमें ही क्रोध वह काम दे सकता है जिसके लिये अुसका विकास होता है।

क्रोधकी अुग्र चेष्टाओंका लक्ष्य हानि या पीड़ा पहुँचानेके पहले आलम्बनमें भयका सञ्चार करना रहता है। जिसपर क्रोध प्रकट किया जाता है वह यदि डर जाता है और नम्र होकर पश्चात्ताप करता है तो क्षमाका अवसर सामने आता है। क्रोधका गर्जन-तर्जन क्रोध-पात्रके लिये भावी दुष्परिणामकी सूचना है, जिससे कभी-कभी अुद्देश्यकी पूर्ति हो जाती है और दुष्परिणामकी नौबत नहीं आती। अेककी अुग्र आकृति देख दूसरा किसी अनिष्ट व्यापारसे विरत हो जाता है या नम्र होकर पूर्वकृत दुर्व्यवहारके लिये क्षमा चाहता है। बहुतसे स्थलोंपर तो क्रोधका लक्ष्य किसीका गर्व चूर्ण करनामात्र रहता है, अर्थात् दुःखका विषय केवल दूसरेका गर्व या अहंकार होता है।

अभिमान दूसरोंके मानमें या अुसकी भावनामें बाधा डालता है, अिससे यह बहुतसे लोगोंको यों ही खटका करता है। लोग जिस तरह हो सके—अपमान द्वारा, हानि द्वारा—अभिमानीको नम्र करना चाहते हैं। अभिमानपर जो रोष होता है अुसकी प्रवृत्ति अभिमानीको केवल नम्र करनेकी रहती है; अुसको हानि या पीड़ा पहुँचानेका अुद्देश्य नहीं होता। संसारमें बहुतसे अभिमानका अुपचार अपमान-द्वारा ही हो जाता है।

कभी-कभी लोग अपने कुटुम्बियों या स्नेहियोंसे झगड़कर क्रोध में अपना ही सिर पटक देते हैं। यह सिर पटकना अपनेको दुःख पहुँचानेके अभिप्रायसे नहीं होता, क्योंकि बिल्कुल बेगानोंके साथ कोअी अैसा नहीं करता। जब किसीको क्रोधमें अपना ही सिर पटकते या अङ्ग-भङ्ग करते देखें तब समझ लेना चाहिये कि अुसका क्रोध अैसे व्यक्तिके अूपर है जिसे अुसके सिर पटकनेकी परवा है, अर्थात् जिसे अुसका सिर फूटनेसे अुस समय नहीं तो आगे चलकर दुःख पहुँचेगा।

क्रोधका वेग अितना प्रबल होता है कि कभी-कभी मनुष्य यह भी विचार नहीं करता जिसने दुःख पहुँचाया है अुसमें दुःख पहुँचानेकी अिच्छा थी या नहीं। अिसीसे कभी तो वह अचानक पैर कुचल जानेपर किसीको मार बैठता है और कभी ठोकर खाकर कङ्कड़-पत्थर तोड़ने लगता है। चाणक्य ब्राह्मण अपना विवाह करने जाता था। मार्गमें कुश अुसके पैरमें चुभे। वह चट मट्ठा और कुदाली लेकर पहुँचा और कुशोंको अुखाड़ अुखाड़कर अुनकी

जड़ोमें मट्ठा देने लगा। अेक बार मैंने देखा कि अेक ब्राह्मण देवता चूल्हा फूँकते फूँकते थक गअे। जब आग न जली तब अुसपर कोप करके चूल्हेमें पानी डाल किनारे हो गये। अिस प्रकारका क्रोध अपरिष्कृत है। यात्रियोंने बहुतसे अैसे जङ्गलियोंका हाल लिखा है जो रास्तेमें पत्थरकी ठोकर लगनेपर बिना अुसको चूर चूर किये आगे नहीं बढ़ते। अधिक अभ्यासके कारण यदि कोअी मनोविकार बहुत प्रबल पड़ जाता है तो वह अन्तःप्रकृतिमें अव्यवस्था अुत्पन्न कर मनुष्यको बचपनसे मिलती-जुलती अवस्थामें ले जाकर पटक देता है।

क्रोध सब मनोविकारोंसे फुर्तीला है अिसीसे अवसर पड़नेपर यह और दूसरे मनोविकारोंका भी साथ देकर अुनकी तुष्टिका साधक होता है। कभी वह दयाके साथ कूदता है, कभी घृणाके। अेक क्रूर कुमार्गी किसी अनाथ अबलापर अत्याचार कर रहा है। हमारे हृदयमें अुस अनाथ अबलाके प्रति दया अुमड़ रही है। पर दयाकी अपनी शक्ति तो त्याग और कोमल व्यवहारतक होती है। यदि वह स्त्री अर्थ-कष्टमें होती तो अुसे कुछ देकर हम अपनी दयाके वेगको शान्त कर लेते। पर यहाँ तो अुस अबलाके दुःखका कारण मूर्तिमान् तथा अपने विरुद्ध प्रयत्नोंको ज्ञानपूर्वक रोकनेकी शक्ति ही रखनेवाला है। अैसी अवस्थामें क्रोध ही अुस अत्याचारीके दमनके लिये अुत्तेजित करता है, जिसके बिना हमारी दया ही व्यर्थ जाती। क्रोध अपनी अिस सहायताके बदलेमें दयाकी वाहवाहीको नहीं बँटाता। काम क्रोध करता है पर नाम दया ही का होता है। लोग यही कहते हैं कि "अुसने दया करके बचा लिया"; यह

क्रोअी नहीं कहता कि "क्रोध करके बचा लिया।" असे अवसरों-पर क्रोध दयाका साथ न दे तो दया अपनी प्रवृत्तिके अनुसार परिणाम अुपस्थित ही नहीं कर सकती।

क्रोध शान्ति भङ्ग करनेवाला मनोविकार है। अेकका क्रोध दूसरेमें भी क्रोधका सञ्चार करता है। जिसके प्रति क्रोध प्रदर्शन होता है वह तत्काल अपमानका अनुभव करता है और अिस दुःखपर अुसकी भी त्योरी चढ़ जाती है। यह विचार करनेवाले बहुत कम निकलते हैं कि हमपर जो क्रोध प्रकट किया जा रहा है वह अुचित है या अनुचित। अिसीसे धर्म, नीति और शिष्टाचार तीनोंमें क्रोधके निरोधका अुपदेश पाया जाता है। संत लोग तो खलोंके बचन सहते ही हैं; दुनियादार लोग भी न जाने कितनी अूँची-नीची पचाते रहते हैं। सभ्यताके व्यवहारमें भी क्रोध नहीं तो क्रोधके चिन्ह दबाये जाते हैं। अिस प्रकारका प्रतिबंध समाजकी सुख-शान्तिके लिअे बहुत आवश्यक है। पर अिस प्रतिबन्धकी भी सीमा है। यह परपीड़कोन्मुख क्रोधतक नहीं पहुँचता।

क्रोधके निरोधका अुपदेश अर्थ-परायण और धर्म-परायण दोनों देते हैं। पर दोनोंमें जिसे अतिसे अधिक सावधान रहना चाहिये वही कुछ भी नहीं रहता। बाकी रुपया वसूल करनेका ढंग बताने वाला चाहे कड़े पड़ने की शिक्षा दे भी दे, पर धजके साथ धर्मकी ध्वजा लेकर चलने वाला धोखेमें भी क्रोधको पापका बापही कहेगा। क्रोध रोकनेका अभ्यास ठगों और स्वार्थियोंको सिद्धों और साधकोंसे कम नहीं होता। जिससे कुछ स्वार्थ निकालना रहता है, जिसे बातोंमें

फँसाकर ठगना रहता है अुसकी कठोरसे कठोर और अनुचित बातोंपर न जाने कितने लोग जरा भी क्रोध नहीं करते, पर अुनका यह अक्रोध न धर्मका लक्षण है, न साधन।

क्रोधके प्रेरक दो प्रकारके दुःख हो सकते हैं—अपना दुःख और पराया दुःख। जिस क्रोधके त्यागका अुपदेश दिया जाता है वह पहले प्रकारके दुःखसे अुत्पन्न क्रोध है। दूसरेके दुःखपर अुत्पन्न क्रोध बुराअीकी हदके बाहर समझा जाता है। क्रोधोत्तेजक दुःख जितना ही अपने सम्पर्कसे दूर होगा अुतना ही लोकमें क्रोधका स्वरूप सुन्दर और मनोरम दिखाअी देगा। अपने दुःखसे आगे बढ़नेपर भी कुछ दूरतक क्रोधका कारण थोड़ा-बहुत अपना ही दुःख कहा जा सकता है—जैसे, अपने आत्मीय या परिजनका दुःख, अिष्ट-मित्रका दुःख। अिसके आगे भी जहाँतक दुःखकी भावनाके साथ कुछ अैसी विशेषता लगी रहेगी कि जिसे कष्ट पहुँचाया जा रहा है वह हमारे ग्राम, पुर या देशका रहनेवाला है, वहाँतक हमारे क्रोधके सौन्दर्य्यकी पूर्णतामें कुछ कसर रहेगी। जहाँ अुक्त भावना निर्विशेष रहेगी वहीं सच्ची पर-दुःख-कातरता मानी जायगी, वहीं क्रोधके स्वरूपको पूर्ण सौन्दर्य्य प्राप्त होगा—अैसा सौन्दर्य्य जो काव्य-क्षेत्रके बीच भी जगमगाता आया है।

यह क्रोध करुणाके आज्ञाकारी सेवकके रूपमें हमारे सामने आता है। स्वामीसे सेवक कुछ कठिन होते ही हैं; अुनमें कुछ अधिक कठोरता रहती ही है। पर यह कठोरता अैसी कठोरताका भङ्ग करनेके लिये होती है जो पिघलनेवाली नहीं होती। क्रौञ्चके

वधपर वाल्मीकि मुनिके करुण क्रोधका सौन्दर्य्य अेक महाकाव्यका सौन्दर्य्य हुआ। अुक्त सौन्दर्य्यका कारण है निर्विशेषता। वाल्मीकि-के क्रोधके भीतर प्राणिमात्रके दुःखकी सहानुभूति छिपी है—रामके क्रोधके भीतर सम्पूर्ण लोकके दुःखका क्षोभ समाया हुआ है। क्षमा जहाँसे श्रीहत हो जाती है वहींसे क्रोधके सौन्दर्य्यका आरम्भ हो जाता है। शिशुपालकी बहुतसी बुराअियोंतक जब श्रीकृष्णकी क्षमा पहुँच चुकी तब जाकर अुसका लौकिक लावण्य फीका पड़ने लगा और क्रोधकी समीचीनताका सूत्रपात हुआ। अपनेही दुःखपर अुत्पन्न क्रोध तो प्रायः समीचीनता ही तक रह जाता है, सौन्दर्य्य-दशातक नहीं पहुँचता। दूसरेके दुःखपर अुत्पन्न क्रोधमें या तो हमें तत्काल क्षमाका अवसर या अधिकार ही नहीं रहता अथवा वह अपना प्रभाव खो चुकी रहती है।

बहुत दूरतक और बहुत कालसे पीड़ा पहुँचाते चले आते हुअे किसी घोर अत्याचारीका बना रहना ही लोककी क्षमाकी सीमा है। अिसके आगे क्षमा न दिखाअी देगी—नैराश्य, कायरता और शिथिलता ही छाअी दिखाअी पड़ेगी। अैसी गहरी अुदासीकी छायाके बीच आशा, अुत्साह और तत्परताकी प्रभा जिस क्रोधाग्निके साथ फूटती दिखाअी पड़ेगी अुसके सौन्दर्य्यका अनुभव सारा लोक करेगा। रामका कालाग्नि-सदृश क्रोध अैसा ही है। वह सात्विक तेज है; तामस ताप नहीं।

दण्ड कोपका ही अेक विधान है। राजदण्ड राजकोप है, राजकोप, लोक-कोप और लोक-कोप धर्म-कोप है। राजकोप धर्म-कोपसे

जहाँ अेकदम भिन्न दिखाअी पड़े वहाँ अुसे राजकोप न समझकर कुछ विशेष मनुष्योंका कोप समझना चाहिये। अैसा कोप राजकोपके महत्व और पवित्रताका अधिकारी नहीं हो सकता। अुसका सम्मान जनता अपने लिये आवश्यक नहीं समझ सकती।

वैर क्रोधका अचार या मुरब्बा है। जिससे हमें दुःख पहुँचा है अुसपर यदि हमने क्रोध किया और यह क्रोध हमारे हृदयमें बहुत दिनोंतक टिका रहा तो वह वैर कहलाता है। अिस स्थाअी रूपमें टिक जानेके कारण क्रोधका वेग और अुग्रता तो धीमी पड़ जाती है पर लक्ष्यको पीड़ित करनेकी प्रेरणा बराबर बहुत कालतक हुआ करती है। क्रोध अपना बचाव करते हुअे शत्रुको पीड़ित करनेकी युक्ति आदि सोचनेका समय प्रायः नहीं देता, पर वैर अुसके लिये बहुत समय देता है। सच पूछिये तो क्रोध और वैरका भेद केवल कालकृत है। दुःख पहुँचनेके साथ ही दुःख-दाताको पीड़ित करनेकी प्रेरणा करनेवाला मनोविकार क्रोध और कुछ काल बीत जानेपर प्रेरणा करनेवाला भाव वैर है। किसीने आपको गाली दी। यदि आपने अुसी समय अुसे मार दिया तो आपने क्रोध किया। मान लीजिये कि वह गाली देकर भाग गया और दो महीने बाद आपको कहीं मिला। अब यदि आपने अुससे बिना फिर गाली सुने, मिलनेके साथ ही अुसे मार दिया तो यह आपका वैर निकालना हुआ। अिस विवरणसे स्पष्ट है कि वैर अुन्हीं प्राणियोंमें होता है जिनमें धारणा अर्थात् भावोंके सञ्चयकी शक्ति होती है। पशु और बच्चे किसीसे वैर नहीं मानते। चूहे और

बिल्लीके सम्बन्धका 'वैर' नाम आलङ्कारिक है। आदमीका, न आम-अंगूरसे वैर है, न भेड़-बकरेसे। पशु और बच्चे दोनों क्रोध करते हैं और थोड़ी देरके बाद भूल जाते हैं।

क्रोधका अेक हल्का रूप है चिड़चिड़ाहट, जिसकी व्यंजना प्रायः शब्दों ही तक रहती है। अिसका कारण भी वैसा अुग्र नहीं होता। कभी-कभी चित्त व्यग्र रहने, किसी प्रवृत्तिमें बाधा पड़ने या किसी बातका ठीक सुभीता न बैठनेके कारण ही लोग चिड़-चिड़ा अुठते हैं। अैसे सामान्य कारणोंके अवसर बहुत अधिक आते रहते हैं अिससे चिड़चिड़ाहटके स्वभावगत होनेकी सम्भावना बहुत अधिक रहती है। किसी मत, सम्प्रदाय या संस्थाके भीतर निरूपित आदर्शोंपर ही अनन्य दृष्टि रखनेवाले बाहरकी दुनिया देख-देखकर अपने जीवन-भर चिड़चिड़ाते चले जाते हैं। जिधर निकलते हैं, रास्ते-भर मुँह बिगड़ा रहता है। चिड़चिड़ाहट अेक प्रकारकी मानसिक दुर्बलता है, अिसीसे रोगियों और बुड्ढोंमें अधिक पाअी जाती है। अिसका स्वरूप अुग्र और भयङ्कर न होनेसे यह बहुतोंके—विशेषतः बालकोंके—विनोदकी अेक सामग्री भी हो जाती है। बालकोंको चिड़चिड़े बुड्ढोंको चिढ़ानेमें बहुत आनन्द आता है और कुछ विनोदी बुड्ढे भी चिढ़नेकी नक़ल किया करते हैं। कोअी 'राधाकृष्ण' कहनेसे, कोअी 'सीताराम' पुकारनेसे और कोअी 'करेले' का नाम लेनेसे चिढ़ता है और अपने पीछे लड़कोंकी अेक खासी भीड़ लगाअे फिरता है। जिस प्रकार लोगोंको हँसानेके लिये कुछ लोग मूर्ख या बेवकूफ़ बनते हैं अुसी प्रकार

चिड़चिड़े भी। मूर्खता मूर्खको चाहे रुलाअे पर दुनियाको तो हँसाती ही है। मूर्ख हास्यरसके बड़े प्राचीन आलम्बन हैं। न जाने कबसे वे अिस संसारकी रुखाअीके बीच हासका विकास कराते चले आ रहे हैं। आज भी दुनियाँको हँसनेका हौसला बहुत कुछ अुन्हींकी बरकतसे हुआ करता है।

किसी बातका बुरा लगना, अुसकी असह्यताका क्षोभयुक्त और आवेगपूर्ण अनुभव होना, 'अमर्ष' कहलाता है। पूर्ण क्रोधकी अवस्थामें मनुष्य दुःख पहुँचानेवाले पात्रकी ओर ही अुन्मुख रहता है—अुसीको भयभीत या पीड़ित करनेकी चेष्टामें प्रवृत्त रहता है। अमर्षमें दुःख पहुँचानेवाली बातके ब्योरोंपर और अुसकी असह्यतापर विशेष ध्यान रहता है। अिसकी ठीक व्यञ्जना अैसे वाक्योंमें समझनी चाहिअे—"तुमने मेरे साथ यह किया, वह किया। अबतक तो मैं सहता आया, अब नहीं सह सकता।" अिसके आगे बढ़कर जब कोअी दाँत पीसता और गरजता हुआ यह कहने लगे कि "मैं तुम्हें धूलमें मिला दूँगा; तुम्हारा घर खोदकर फेंक दूँगा" तब क्रोधका पूर्ण स्वरूप समझना चाहिये।

---

४. डॉ. श्यामसुंदरदास

जीवनमें पचास वर्षसे अधिक समयतक हिंदी भाषा और अुसके साहित्यकी अुन्नतिके लिअे प्रयत्नशील रहनेवाले डॉ. श्यामसुंदरदासजीका हिंदीपर बड़ा ऋण है। हिंदीको साहित्यिक रूप देने, और हिंदी-साहित्यका प्रचार-प्रसार तथा पुनरुत्थान कार्य करनेका भी बहुत कुछ श्रेय अिन्हींको है।

भाषाविज्ञान; साहित्यालोचन; रूपक रहस्य; गोस्वामी तुलसीदास; भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'हिंदी शब्द-सागर' और 'हिंदी-वैज्ञानिक कोश' का संपादन भी आप ही ने किया है।

'नागरी प्रचारिणी सभा' काशीके आप आधार-स्तंभ थे। हिंदी आलोचनाको गौरवपूर्ण स्थान देनेमें आपका बड़ा हाथ रहा है।

गोसाआींजीकी कला

गोसाआींजी भक्तिके क्षेत्रमें जितने महान् थे अुतने ही कविताके क्षेत्रमें भी। वस्तुतः अुनकी कविता भक्तिका ही प्रतिरूप थी। अुनकी भक्तिही वाणीका आवरण पहनकर कविताके रूपमें व्यक्त हुआी थी। अुनकी कविता अपने आप अपना अुद्देश्य नहीं थी। 'कवि न होअुँ नहि चतुर प्रवीना' में जहाँ अुनकी विनयका पता चलता है वहाँ यह भी संकेत है कि वे अपनेको कवि न समझकर कुछ और समझते थे। जिस बड़ी अुम्रमें अुन्होंने कविता करना आरंभ किया था अुससे पता चलता है कि जिसे मिल्टन अुन्नतमनाओंकी निर्बलता कहते हैं वह यशोलिप्सा अुन्हें छूतक नहीं गयी थी।

जिस प्रकार गोसाआींजीका जीवन राममय था अुसी प्रकार अुनकी कविता भी। अेक रामको अपनाकर अुन्होंने सारे जगत्को अपना लिया। 'राम-चरित' कहकर कोआी वस्तु अैसी न रही जिसके विषयमें अुनके लिये कहना शेष रह गया हो। राम-चरित्रकी व्यापकतामें अुन्हें अपनी कलाके संपूर्ण कौशलके विस्तारका सुयोग प्राप्त था। अुसीमें अुन्होंने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्तिका परिचय दिया। अंतः-प्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनोंसे अुनके हृदयका समन्वय था। दोनोंको अुन्होंने भिन्न भिन्न परिस्थितियोंमें देखा था। अुनकी पारगामी सूक्ष्म दृष्टि अुनके अंतस्तलतक पहुँची थी। अिसीसे अुन्हें चरित्र-चित्रण और प्रकृति-चित्रण दोनोंमें सफलता प्राप्त हुआी। परंतु गोसाआींजी

आध्यात्मिक धर्मशील प्रकृतिके मनुष्य थे। सबके संरक्षक रामके प्रेमने अुन्हें संरक्षणके मूल शीलमय धर्मका प्रेमी बनाया था, जिससे संरक्षणमें अुन्हें प्रकृति भी संलग्न दिखाअी देती थी। पंपासरोवरका वर्णन करते हुअे वे कहते हैं---

'फल-भर नम्र बिटप सब, रहे भूमि निअराअि।
पर अुपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाअि॥
सुखी मीन सब अेक रस, अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्हिके दिन सुख-संजुत जाहिं॥'

प्राकृतिक दृश्योंमें शील-संरक्षकका धर्मशीला नीतिकी यह छाया अुनके काव्योंमें सर्वत्र दिखाअी देती है। किष्किंधा कांडके अन्तर्गत वर्षा और शरद् ऋतुके वर्णन अिसके बहुत अच्छे अुदाहरण हैं। यह गोसाअींजीका महत्त्व है कि धर्म-सादृश्य, गुणोत्कर्ष आदि अलंकार-योजनाके सामान्य नियमोंका निर्वाह करते हुअे भी वे शील और सुरुचिके प्रसारमें समर्थ हुअे हैं।

बाह्य प्रकृतिसे अधिक गोसाअींजीकी सूक्ष्म अंतर्दृष्टि अंतःप्रकृति-पर पड़ी थी। मनुष्य-स्वभावसे अुनका सर्वांगीण परिचय था। भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें पड़कर मनकी क्या दशा होती है, अिसको वे भली भाँति जानते थे। अिसीसे अुनका चरित्र-चित्रण बहुत पूर्ण और दोष-रहित हुआ है। रामचरितमानसमें प्रायः सभी प्रकारके पात्रोंके चरित्र-अंकनमें अुन्होंने अपनी सिद्धहस्तता दिखाअी है। दूसरेके अुत्कर्षको अकारण ही न देख सकनेवाले दुर्जन किस प्रकार किसी दूसरे व्यक्तिको अपनी मनोवृत्ति देनेके लिये पहले स्वयं स्वार्थ-त्यागी

बनकर अपनेको अुनका हितैषी जताकर अुनके हृदयमें अपने भावोंको भरते हैं, अिसका मंथराके चरित्रमें हमें अच्छा दिग्दर्शन मिलता है। दुर्जनोंकी जितनी चालें होती हैं अुन्हींके दिग्दर्शनके लिये मानो सरस्वती मंथराकी जिह्वापर बैठी थी।

जिस पात्रको जो स्वभाव देना अुन्हें अभीष्ट रहा है, अुसे अुन्होंने कोमल वयमें बीज-रूपमें दिखलाकर आगे बढ़ते हुअे भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें अुसका नैसर्गिक विकास दिखाया है। रामचंद्रके जिस स्वार्थ-त्यागको हम बाहु-बलसे विजित, न्यायतः स्वायत्त और वस्तुतः हाथमें आये हुअे लंकाके समृद्ध राज्यको बिना हिचक विभीषणको सौंप देनेमें देखते हैं, वह अेकाकी आअी हुअी अुमंगका परिणाम नहीं है। वह रामचंद्रका बाल्यकाल ही से क्रमपूर्वक विकास पाता हुआ स्वभाव है। अुसे हम चौगानके खेलमें छोटे भाअियोंसे जीतकर भी हार मानते हुअे बालक राममें, अन्य पुत्रोंकी अुपेक्षा कर जेठे पुत्रको ही राज्याधिकारी माननेवाली अन्याय-युक्त प्रथापर विचार करते हुअे युवा राममें, और फिर प्रसन्नतासे राज्य छोड़कर वनवासी ऋषि-मुनियोंकी भाँति तपोमय जीवन बिताते हुअे वनवासी राममें देखते हैं।

रामचरितमानसमें रावणका जितना चरित हमारी दृष्टिमें पड़ता है अुसमें आदिसे अंततक अुसकी अेक विशेषता हमें दृष्टिगत होती है। वह है घोर-भौतिकता। कदाचित् आत्माकी अुपेक्षा करते हुअे भौतिक शक्तिका अर्जन ही गोसाअींजी राक्षसत्वका अभिप्राय समझते थे। अुसका अपार बल, विश्वविश्रुत वैभव, अुसकी धर्महीन

शासन-प्रणाली जिसमें ऋषि-मुनियोंसे कर वसूल किया जाता था, अुसके राज्य-भरमें धार्मिक अभिरुचिका अभाव, ये सब अुसके भौतिकवादके द्योतक हैं। प्रश्न अुठ सकता है कि वह बड़ा तपस्वी भी तो था? किंतु अुसके तपसे भी अुसकी भौतिकताका ही परिचय मिलता है। वह तप अुसने अपनी आध्यात्मिक अुन्नति या मुक्तिके अुद्देश्यसे नहीं किया था वरन् अिस कामनासे कि भौतिक सुखको भोगनेके लिये वह अिस शरीरसे अमर हो जाय।

हनुमानजीमें गोसाओंजीने सेवकका आदर्श खड़ा किया है। वे रामके सेवक हैं। गाढ़े समयपर जब सबका धैर्य और शक्ति जवाब दे जाती है तब हनुमानजी ही से रामका काम सधता है। समुद्रको लाँघकर सीताकी खबर वही लाअे। लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर द्रोणाचल पर्वतको अुखाड़ ले आकर अुन्होंने संजीवनी बूटी प्रस्तुत की। भक्तके हृदयमें बसनेकी रामकी प्रतिज्ञा जब व्यवधानमें पड़ी तब अुन्हींने अपना हृदय चीरकर अुसकी सत्यता सिद्ध की। परंतु हनुमानजीके चरित्रमें अेक बातसे कुछ असमंजस हो सकता है। वे सुग्रीवके सेवक थे। सुग्रीवसे बढ़कर रामकी भक्ति करके क्या अुन्होंने सेवाधर्मका व्यतिक्रम नहीं किया? नहीं, लंका-विजयतक वास्तवमें अुन्होंने सुग्रीवकी सेवा कभी छोड़ी ही नहीं और लोगोंसे कुछ दिन बादतक जो वे अयोध्यामें रामकी सेवा करते रहे वह भी सुग्रीवकी आज्ञासे—

'दिन दसि करि रघुपति-पद-सेवा। पुनि तव चरन देखिहौं देवा॥
पुन्य-पुंज तुम पवन-कुमारा। सेवहु जाअि कृपा-आगारा॥'

अिसी प्रकार भरतके हृदयकी सरलता, निर्मलता, निःस्पृहता और धर्म-प्रवणता अुनकी सब बातोंसे प्रकट होती है। राम खुशीसे अुनके लिये राज्य छोड़ गये हैं, कुलगुरु वसिष्ठ अुनको सिंहासनपर बैठनेकी अनुमति देते हैं, कौशल्या अनुरोध करती हैं, प्रजा प्रार्थना करती है; परंतु सिंहासनासीन होना तो दूर रहा, वे अिसी बातसे क्षुब्ध हैं कि लोग कैकेयीके कुचक्रमें अुनका हाथ न देखें। वे मातासे अुनकी कुटिलताके लिये रुष्ट हैं। परंतु साथ ही वे अपनेको मातासे अच्छा भी नहीं समझते, अिसीमें अुनके हृदयकी स्वच्छता है। जब माता ही बुरी है तो पुत्र भला कैसे हो सकता है?—

'मातु मंद मैं साधु सुचाली। अुर अस आनत कोटि कुचाली॥'

अुनको सिंहासनपर स्वीकार करनेके लिये आग्रह करनेवाले लोगोंसे अुन्होंने कहा था—

'कैकेयि-सुअन कुटिल-मति, राम-विमुख गत-लाज।
तुम्ह चाहत सुख मोह-बस, मोहिसे अधमके राज॥'

भरतके संबंधमें चाहे यह बात न खपती और वे प्रजाका पालन बड़े प्रेमसे करते जैसा अुन्होंने किया भी, परंतु अुनका राज्य स्वीकार करना महत्वाकांक्षी राजकुमारों और द्वेषपूर्ण सौतोंके लिये अेक बुरा मार्ग खोल देता, जिससे प्रत्येक अभिषेकके समय किसी न किसी कांडकी आशंका बनी रहती। अिसी बातको दृष्टिमें रखकर अुन्होंने कहा था—

'मोहि राज हठि देअिहअु जबहीं। रसा रसातल जाअिहि तबहीं॥'

भरतकी लोक-मर्यादाकी, जिसका ही दूसरा नाम धर्म है, रक्षाकी अिस चिंताने ही रामको

'भरत भूमि रह राअुरि राखी।'

कहनेके लिये प्रेरित किया था। अुमड़ते हुअे हृदय और वाष्प-गद्‌गद् कंठसे भरतके रामको लौटा लानेके लिये चित्रकूट पहुँचनेपर जब रामने अुनसे अपना धर्म-संकट बतलाया तब अुसी धर्म-प्रवणताने अुन्हें राज्यका भार स्वीकार करनेके लिये बाध्य किया। परंतु अुन्होंने केवल राजाके कर्तव्यकी कठोरताको स्वीकार किया, अुसके सुख-वैभवको नहीं। सुख-वैभवके स्थानपर अुन्होंने वनवासीका कष्टमय जीवन स्वीकार किया, जिससे अुनके अुदाहरणमें धर्मोल्लंघनकी आशंका दूर हो जाय।

परंतु वास्तविक मानव-जीवन अितना सरल नहीं है जितना सामान्यत: बाहरसे दीखता है, यह अूपरके वर्णनसे प्रकट हो सकता है। मनुष्यके स्वभावमें अेक ही भावनाकी प्रधानता नहीं रहती। प्राय: अेकसे अधिक भावनाअें अुसके जीवनमें स्थित होकर अुसके स्वभावकी विशेषता लक्षित कराती हैं। जब कभी अैसी दो भावनाअें अेक दूसरेकी विरोधिनी होकर आती हैं अुस समय यदि कवि अिनके चित्रणमें किंचित् भी असावधानी करे तो अुसका चित्रण सदोष हो जायगा। अुदाहरणके लिये गोसाअींजीने लक्ष्मणको प्रचंड प्रकृति दी है, परंतु साथ ही अुनके हृदयमें रामके लिये अगाध भक्तिका भी सृजन किया है। जहाँपर अिन दोनों बातोंका विरोध न हो वहाँपर अिनके चित्रणमें अुतनी कठिनाअी नहीं

हो सकती। जनकके 'वीर-विहीन मही मैं जानी' कहते ही वे तमककर अुठते हैं—

'रघुबंसिन महँ जहँ कोअु होअी। तेहि समाज अस कहै न कोअी॥'

परशुरामके रोष-भरे वचनोंको सुनकर वे कोरी-कोरी सुनानेमें कुछ अुठा नहीं रखते—

'भृगुवर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचौं नृप-द्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥'

और भरतको ससैन्य चित्रकूटकी ओर आते देख रामके अनिष्टकी आशंका होते ही वे बिना आगा-पीछा सोचे भरतका काम तमाम करनेके लिये अुद्यत हो जाते हैं—

'जिमि करि-निकर दलअि मृगराजू। लेअि लपेट लवा जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहि सेन-समेता। सानुज निदरि निपातअुँ खेता॥'

अिस प्रकार जिस स्वभावका व्यक्ति जिस अवस्थामें जैसा काम करता, गोसाअींजीने अुसे वैसा ही करते दिखाया है। अिसका केवल अेक अपवाद हमें मिलता है। वह है रामका बालिको छिपकर मारना। यह शील-सागर न्यायप्रेमी रामके स्वभावके अनुकूल नहीं हुआ है—

'मारेहु मोहिं ब्याधकी नाअीं।'

मरते समय बालिके किअे हुअे अिस दोषारोपणका राम कोअी संतोषजनक अुत्तर नहीं दे सके।

'अनुज बंधू भगिनी सुत-नारी। सुन सठ कन्या सम ये चारी।
अिनहिं कुदृष्टि बिलोकअि जोअी। ताहि बधे कछु पाप न होअी॥'

अनुज-वधू यदि कन्याके समान है तो क्या अग्रज-वधू भी माताके समान नहीं है? सुग्रीवका तो अिसके लिये रामचंद्रने वध नहीं किया? यदि बालि वध्य भी था और वह भी रामके द्वारा तो भी कोअी यह नहीं कह सकता कि जिस अुपायसे रामने बालिको मारा वह अुचित था। रामको चाहिये था कि पहले बालिपर दोषारोपण करते, फिर अुसे ललकारकर युद्धमें मारते, जैसा महावीर-चरितमें भवभूतिने कराया है। अुसमें रामके बालिको अपना शत्रु समझनेका भी कारण दिया गया है; क्योंकि बालिने पहले ही रामके विरुद्ध रावणसे मित्रता कर ली थी। दूसरेके साथ युद्धमें लगे हुअे व्यक्तिको, जिसे अुनकी ओरसे कुछ भी खटका नहीं है, पेड़की आड़से छिपकर मारना रामके चरित्रपर अेक बड़ा भारी कलंक है, जिसपर न तो हेतुवादके चूनेसे कोअी लीपा-पोती की जा सकती है और न मनुष्यताके रंगसे ही। अुद्देश्य चाहे कितना ही अुत्तम क्यों न हो वह अितने गर्हित अुपायके अनौचित्यको दूर नहीं कर सकता; और न यह कलंक रामचंद्रको अवतारसे मनुष्यकी कोटिमें अुतार लानेके लिये ही आवश्यक है। विरहातुरतामें करुण विलाप करते हुअे तथा लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर यह कहते हुअे—

'जनत्यौं जो बन बंधु-बिछोहू। पिता-बचन मनत्यौं नहिं ओहू॥'

अुन्होंने जो हृदयकी मानवोचित मधुर कमजोरी दिखाअी है वही अुन्हें मनुष्यताकी कोटिसे बिलकुल बाहर जानेसे रोकनेके लिये पर्याप्त

है, और नीचे अुतरकर धर्माधर्मका बिलकुल विचार ही त्याग देना मनुष्यताकी कोटिसे भी नीचे गिरना है।

परंतु अिसका सारा दोष गोसाअींजीपर ही नहीं मढ़ा जा सकता। अुनसे पहलेके रामचरितके प्रायः सभी लेखकोंने रामचंद्रसे यह कर्म कराया है। अिससे अिस घटनाका महत्त्व अितिहासका-सा हो जाता है, जिसके विरुद्ध चलना गोसाअींजी चाहते न थे। अन्यत्र गोसाअींजीने अिसे भक्त-वत्सलताका अुदाहरण कहकर समझानेका प्रयत्न किया है, परंतु अुससे कुछ भी समाधान नहीं होता। यह कहना पड़ेगा कि आपत्तिमें पड़कर रामको बहुत कुछ कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान नहीं रह गया था। अुन्हें अेक मित्रकी आवश्यकता थी जो, चाहे जिस प्रकार हो, अुनके अुपकारके भारसे दबकर अुनका सच्चा सहायक हो जाता। सुग्रीवने पहले मित्रताका प्रस्ताव किया, अिसलिये रामने अुसीके साथ मित्रता कर ली। यदि बालिको रामचंद्रकी मित्रता अभीष्ट होती और वह सुग्रीवके पहले मित्रताका प्रस्ताव करता तो संभवतः बालिके स्थानपर सुग्रीवको स्वर्गकी यात्रा करनी पड़ती।

संक्षेपमें, चाहे जिस दृष्टिसे देखें गोसाअींजीमें हम सब दशाओंमें कलाका अन्यतम अुत्कर्ष पाते हैं। जहाँ कहीं हम अुन्हें देखते हैं, वहाँ हम अुन्हें सर्वोपरि देखते हैं। पहलेसे दूसरा स्थान भी अुनका कहीं नहीं दिखाअी देता और काव्य-साहित्यका अैसा कौन क्षेत्र है जहाँ हम अुन्हें नहीं देखते? वास्तवमें हिंदी भाषाका संपूर्ण वैभवसे पूर्ण शक्तिका साक्षात्कार गोसाअींजीमें ही होता है। परंतु हिंदीके होकर वे केवल हिंदुस्तान के ही नहीं रहे, बल्कि अपनी

अलौकिक कवित्व-शक्तिके कारण समस्त संसारके हो रहे हैं। अेक न माने जानेवाले पूर्व और पश्चिम भी अुनकी प्रशंसा करनेके लिये अेक हो रहे हैं। देश और कालका अतिक्रमण करनेवाली अुनकी प्रतिभाके मूलमें अुनकी आत्म-विस्मृतिकर तल्लीनता ही है; अिसीलिये अुनकी कृतियोंमें कलाको वह अुत्कर्ष प्राप्त हुआ है जिसे देखकर 'हरिऔध' जीकी सार्थक वाणीमें अपना स्वर मिलाते हुअे, हमें भी यही कहते बनता है कि—

'कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसीकी कला।'

---

५. श्रीमती महादेवी वर्मा

आपका जन्म सं. १९६४ में फर्रुखाबादमें हुआ था। आपकी माता हिंदीकी विदुषी और भक्त थीं। तुलसी, सूर और मीराका साहित्य आपने अपनी मातासे ही पढ़ा। आपकी आरंभिक शिक्षा अिंदौरमें हुअी। घरपर चित्रण, संगीत आदिकी शिक्षा प्राप्त की। 'क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज' से सं. १९८५ में बी. अे. परीक्षा सर्वप्रथम होकर अुत्तीर्ण की और फिर संस्कृतमें अेम. अे. किया।

बचपनसे ही कविताकी ओर आपकी रुचि थी। पहले आप ब्रजभाषामें कविता करती थीं, किंतु खड़ीबोलीकी कविताका आपपर बहुत प्रभाव पड़ा और आपने भी खड़ीबोलीमें रचना प्रारंभ कर दी। आप हृदयके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावोंका मूर्तिमान अंकन करनेमें बहुत सफल हुअी हैं। आपकी कविताओंमें मधुर वेदनाकी अनुभूति रहती है। 'नीरजा' नामक काव्यपर आपको ५०० रु० का 'सेकसरिया पारितोषिक' मिला है। अेम. अे. अुत्तीर्ण करनेपर आप 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' की मुख्याध्यापिका नियुक्त हुअीं। आपके सहयोगसे अुक्त विद्यापीठ भारतकी अेक श्रेष्ठ शिक्षण-संस्था बन गयी है। आप कअी वर्षोंतक मासिक 'चाँद' की संपादिका भी रही हैं।

आपकी रचनाअें: कविता:—१. नीहार; २. रश्मि; ३. नीरजा; ४. सांध्यगीत; ५. दीपशिखा; ६. यामा।

गद्य:—१. अतीतके चलचित्र; २. शृंखलाकी कड़ियाँ; ३. स्मृतिकी रेखाअें।

अतीतके चलचित्र

फागुनके गुलाबी जाड़ेकी वह सुनहली सन्ध्या क्या भुलाअी जा सकती है ? सबेरेके पुलक पंखी वैतालिक अेक लयवती अुड़ानमें अपने-अपने नीड़ोंकी ओर लौट रहे थे। विरल बादलोंके अन्तरालसे अुनपर चलाअे हुअे सूर्यके सोनेके शब्दवेधी बाण अुनकी अुन्मद गतिमें ही अुलझ-अुलझ कर लक्ष्यभ्रष्ट हो रहे थे। पश्चिममें रंगोंका अुत्सव देखते-देखते जैसे ही मुँह फेरा कि नौकर सामने आ खड़ा हुआ। पता चला, अपना नाम न बतानेवाले अेक वृद्ध सज्जन मुझसे मिलनेकी प्रतीक्षामें बहुत देरसे बाहर खड़े हैं। अुनसे सबेरे आनेके लिअे कहना अरण्यरोदन ही हो गया है।

मेरी कविताकी पहली पंक्ति ही लिखी गअी थी, अतः मन खिसिया-सा आया मेरे कामसे अधिक महत्वपूर्ण कौन-सा काम हो सकता है, जिसके लिअे असमयमें अुपस्थित होकर अुन्होंने मेरी कविताको प्राण-प्रतिष्ठासे पहले ही खण्डित मूर्तिके समान बना दिया ? 'मैं कवि हूँ' में जब मेरे मनका सम्पूर्ण अभिमान पुञ्जीभूत होने लगा तब यदि विवेकका 'पर पनुष्य नहीं' में छिपा व्यंग बहुत गहरा न चुभ जाता तो कदाचित् मैं न अुठती। कुछ खीझी, कुछ कठोर-सी मैं बिना देखे ही अेक नअी और दूसरी पुरानी चप्पलमें पैर डालकर जिस तेजीसे बाहर आअी अुसी तेजीसे अुस अवांछित

आगन्तुकके सामने निस्तब्ध और निर्वाक् हो रही। बचपनमें मैंने कभी किसी चित्रकारका बनाया कण्वऋषिका चित्र देखा था— वृद्धमें मानों वह सजीव हो गया था। दूधसे सफ़ेद बाल और दूधफेनी-सी सफ़ेद दाढ़ीवाला वह मुख झुर्रियोंके कारण समयका अंकगणित हो रहा था। कभीकी सतेज आँखें आज अैसी लग रही थीं मानो किसीने चमकीले दर्पणपर फूँक मार दी हो। अेक क्षणमें ही अुन्हें धवल शिरसे लेकर धूल-भरे पैरोंतक, कुछ पुरानी काली चप्पलोंसे लेकर पसीने और मैलकी अेक बहुत पतली कोरसे युक्त खादीकी धुली टोपीतक देखकर कहा—"आपको पहचाना नहीं?" अनुभवोंसे मलिन, पर आँसुओंसे अुजली अुनकी दृष्टि पलभरको अुठी, फिर कासके फूल-जैसी बरौनियोंवाली पलकें झुक आअीं—न जाने व्यथाके भारसे, न जाने लज्जासे!

अेक क्लान्त पर शान्त कण्ठने अुत्तर दिया—"जिसके द्वारपर आया है अुसका नाम जानता है, अिससे अधिक माँगनेवालेका परिचय क्या होगा? मेरी पोती आपसे अेक बार मिलनेके लिये बहुत विकल है। दो दिनसे अिसी अुधेड़-बुनमें पड़ा था। आज साहस करके आ सका हूँ—कलतक शायद साहस न ठहरता अिसीसे मिलनेके लिअे हठ कर रहा था। पर क्या आप अितना कष्ट स्वीकार करके चल सकेंगी? ताँगा खड़ा है।"

मैं आश्चर्यसे वृद्धकी ओर देखती रह गअी—मेरे परिचित ही नहीं अपरिचित भी जानते हैं कि मैं सहज ही कहीं आती-जाती नहीं। यह शायद बाहरसे आअे हैं। पूछा—'क्या वह कहीं

आ सकती ?" वृद्धके लज्जित होनेका कारण मैं न समझ सकी; अुनके ओठ हिले पर कोअी स्वर न निकल सका—और वे मुँह फेरकर गीली आँखोंको छिपानेकी चेष्टा करने लगे। अुनका कष्ट देखकर मेरा बीमारीके संबंधमें प्रश्न करना स्वाभाविक ही था। वृद्धने नितान्त हताश मुद्रामें स्वीकृतिसूचक मस्तक हिलाकर कुछ बिखरे-से शब्दोंमें यह स्पष्ट कर दिया कि अुनके वही अेक पोती है जो आठ वर्षकी अवस्थामें मातृ-पितृहीन और ग्यारहवें वर्षमें विधवा हो गयी थी।

अधिक तर्क-वितर्कका अवकाश नहीं था—सोचा, वृद्धकी पोती अवश्य ही मरणासन्न है! बेचारी अभागी बालिका! पर मैं तो कोअी डाक्टर या वैद्य नहीं हूँ और मुंडन, कनछेदन आदिमें कविको बुलानेवाले लोग अभी अुसे गीतावाचकके समान अन्तिम समयमें बुलाना नहीं सीखे हैं। वृद्ध जिस निहोरेके साथ मेरे मुखका प्रत्येक भाव-परिवर्तन देख रहे थे, अुसीने मानो मेरे कण्ठसे बलात् कहला दिया—"चलिअे, किसीको साथ ले लूँ, क्योंकि लौटते-लौटते अँधेरा हो जावेगा।"

नगरकी शिराओंके समान फैली और अेक दूसरेसे अुलझी हुअी गलियोंसे—जिनमें दूषित रक्त-जैसा नालियोंका मैला पानी बहता है और रोगके कीटाणुओंकी तरह नंगे मैले बालक घूमते हैं—मेरा अुस दिन विशेष परिचय हुआ। किसी प्रकार अेक तिमंजिले मकानकी सीढ़ियाँ पार कर हम लोग अूपर पहुँचे।

दालानमें ही मैली फटी दरीपर, खम्भेका सहारा लेकर बैठी हुअी अेक स्त्री-मूर्ति दिखाअी दी, जिसकी गोदमें मैले कपड़ोंमें लिपटा अेक पिण्ड-सा था। वृद्ध मुझे वहीं छोड़कर भीतरके कमरेको पार कर दूसरी ओरके छज्जेपर जा खड़े हुअे, जहाँसे अुनके थके शरीर और टूटे मनका द्वंद्व धुँधले चल-चित्रका कोअी मूक पर करुण दृश्य बनने लगा।

अेक अुदासीन कंठसे 'आअिये' में निकट आनेका निमंत्रण पाकर मैंने अभ्यर्थना करनेवालीकी ओर ध्यानसे देखा। वृद्धसे अुसकी मुखाकृति अितनी मिलती थी कि आश्चर्य होता था। वही मुखकी गठन, अुसी प्रकारके चमकीले पर धुँधले नेत्र और वैसे ही काँपते-से ओठ। रूखे बाल और मलिन वस्त्रोंमें अुसकी कठोरता वैसी ही दयनीय जान पड़ती थी जैसी ज़मीनमें बहुत दिन गड़ी रहनेके अुपरान्त खोदकर निकाली हुअी तलवार। कुछ खिजलाहट-भरे स्वरने कहा—'बड़ी दया की। पिछले पाँच महीनेसे हम जो कष्ट अुठा रहे हैं अुसे भगवान ही जानते हैं। अब जाकर छुट्टी मिली है; पर लड़कीका हठ तो देखो। अनाथालयमें देनेके नामसे बिलखने लगती है, किसी औरके पास छोड़ आनेकी चर्चासे अन्न-जल छोड़ बैठती है। बार-बार समझाया कि जिससे न जान-पहचान अुसे अैसी मुसीबतमें घसीटना कहाँ की भलमनसाहत है, पर यहाँ सुनता कौन है? लालाजी बेचारे तो संकोचके मारे जाते ही नहीं थे, पर जब हार गअे तब झखमारके जाना पड़ा। अब आप ही अुद्धार करें तो प्राण बचे।" अिस लम्बी-चौड़ी सारगर्भित भूमिकासे

अवाक् मैं जब कुछ प्रकृतिस्थ हुअी तब वस्तुस्थिति मेरे सामने धीरे-धीरे वैसे ही स्पष्ट होने लगी जैसे पानीमें कुछ देर रहनेपर तलकी वस्तुअें। यदि यह न कहूँ कि मेरा शरीर सिहर अुठा था, पैर अवसन्न हो रहे थे और माथेपर पसीनेकी बूँदें आ गअी थीं तो असत्य कहना होगा। सामाजिक विकृतिका बौद्धिक निरूपण मैंने अनेक बार किया है पर जीवनकी अिस विभीषिकासे मेरा यही पहला साक्षात् था। मेरे सुधार सम्बन्धी दृष्टिकोणको लक्ष्य करके परिवारमें प्रायः सभीने कुछ निराश भावसे सिर हिला-हिलाकर मुझे यह विश्वास दिलानेका प्रयत्न किया कि मेरी सात्विक कला अिस लूका झोंका न सह सकेगी और साधनाकी छायामें पले मेरे कोमल सपने अिस धुअेंमें जी न सकेंगे। मैंने अनेक बार सबको यही अेक अुत्तर दिया है कि कीचड़से कीचड़को धो सकना न सम्भव हुआ है न होगा; अुसे धोनेके लिअे निर्मल जल चाहिअे। मेरा सदासे विश्वास रहा है कि अपने दलोंपर मोती-सा जल भी न ठहरने देनेवाली कमलकी सीमातीत स्वच्छता ही अुसे पंकसे जीनेकी शक्ति देती है। और तब अपने अूपर कुछ लज्जित होकर मैंने अुस मटमैले शालको हटाकर निकटसे अुसे देखा जिसको लेकर बाहर भीतर अितना प्रलय मचा हुआ था। अुग्रताकी प्रतिमूर्ति-सी नारीकी अुपेक्षा-भरी गोद और मलिनतम आवरण अुस कोमल मुखपर अेक अलक्षित करुणाकी छाप लगा रहे थे। चिकने, काले और छोटे-छोटे बाल पसीनेसे अुसके ललाटपर चिपककर काले अक्षरों-जैसे जान पड़ते थे और मुँदी पलकें गालोंपर दो अर्धवृत्त बना रही थीं।

छोटी लाल कली-जैसा मुँह नींदमें कुछ खुल गया था, और अुसपर अेक विचित्र-सी मुस्कराहट थी, मानो कोअी सुन्दर स्वप्न देख रहा हो। अिसके आनेसे कितने भरे हृदय सूख गये, कितनी सुखी आँखोंमें बाढ़ आ गअी और कितनोंको जीवनकी घड़ियाँ भरना दूभर हो गया, अिसका अिसे कोअी ज्ञान नहीं। यह अनाहूत, अवाञ्छित अतिथि अपने सम्बन्धमें भी क्या जानता है? अिसके आगमनने अिसकी माताको किसीकी दृष्टिमें आदरणीय नहीं बनाया, अिसके स्वागतमें मेवे नहीं बँटे, बधाअी नहीं गाअी गअी, दादा-नानाने अनेक नाम नहीं सोचे; चाची, ताअीने अपने अपने नेगके लिये वाद-विवाद नहीं किया और पिताने अिसमें अपनी आत्माका प्रतिरूप नहीं देखा। केवल अितना ही नहीं, अिसके फूटे कपालमें विधाताने माताका वह अंक भी नहीं लिखा, जिसका अधिकारी निर्धन-से-निर्धन, पीड़ित-से-पीड़ित स्त्रीका बालक हो सकता है।

समाजके क्रूर व्यंगसे बचनेके लिये अेक घोरतम नरकमें अज्ञात-वास कर जब अिसकी माँने अकेलेमें यन्त्रणासे छटपटा-छटपटा कर अिसे पाया तब मानो अुसकी साँस छूकर ही यह बुझे कोयलेसे दहकता अंगारा हो गया। यह कैसे जीवित रहेगा, अिसकी किसीको चिन्ता नहीं है। है तो केवल यह कि कैसे अपने सिर बिना हत्याका भार लिये ही अिसे जीवनके भारसे मुक्त करनेका अुपकार कर सकें! मनपर जब अेक गम्भीर विषाद असह्य हो अुठा तब अुठकर मैंने अुस बालिकाको देखनेकी अिच्छा प्रकट की।

जो खण्ड अुसके समान है, अुसके जीवन-मरणके लिअे केवल वही अुत्तरदायी है। कोअी पुरुष यदि अुसको अपनी पत्नी नहीं स्वीकार करता तो केवल अिसी मिथ्याके आधारपर वह अपने जीवनके अिस सत्यको—अपने बालकको अस्वीकार कर देगी? संसारमें चाहे अिसको कोअी परिचयात्मक विशेषण न मिला हो परन्तु अपने बालकके निकट तो यह गरिमामयी जननीकी संज्ञा ही पाती रहेगी अिसी कर्तव्यको अस्वीकार करनेका यह प्रबन्ध कर रही है। किसलिये? केवल अिसलिये कि या तो अुस वंचक समाजमें फिर लौटकर गंगा-स्नान, व्रत-अुपवास, पूजा-पाठ आदिके द्वारा सती विधवाका स्वाँग भरती हुअी और भूलोंकी सुविधा पा सके या किसी विधवा-आश्रममें पशुके समान नीलामपर चढ़कर कभी नीची, कभी अूँची बोलीपर बिके, अन्यथा अेक-अेक बूँद विष पीकर धीरे-धीरे प्राण दे।

स्त्री अपने बालकको हृदयसे लगाकर जितनी निर्भय है अुतनी किसी और अवस्थामें नहीं। वह अपनी संतानकी रक्षाके समय जैसी अुग्रचण्डी है वैसी और किसी स्थितिमें नहीं। अिसीसे कदाचित् लोलुप संसार अुसे अपने चक्रव्यूहमें घेरकर बाणोंसे चलनी करनेके लिअे पहले अिसी कवचको छीननेका विधान कर देता है। यदि यह स्त्रियाँ अपने शिशुको गोदमें लेकर साहससे कह सकें कि 'बर्बरो, तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया, पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार भी न देंगी,' तो अिनकी समस्याअें तुरन्त सुलझ जावें। जो समाज अिन्हें, वीरता, साहस त्याग-भरे

मातृत्वके साथ नहीं स्वीकार कर सकता क्या वह अिनकी कायरता और दैन्यभरी मूर्तिको अूँचे सिंहासनपर प्रतिष्ठित कर पूजेगा? युगोंसे पुरुष स्त्रीको अुसकी शक्तिके लिये नहीं सहन-शक्तिके लिये ही दण्ड देता आ रहा है।

मैं अपने भावावेशमें अितनी अस्थिर हो अुठी थी कि अुस समयका कहा-सुना आज अुसी रूपमें ठीक-ठीक याद नहीं आता। परतु जब अुसने खाटसे ज़मीनपर अुतरकर अपनी दुर्बल बाँहोंसे मेरे पैरोंको घेरते हुअे मेरे घुटनोंमें मुँह छिपा लिया, तब अुसकी चुपचाप बरसती हुअी आँखोंका अनुभव कर मेरा मन पश्चात्तापसे व्याकुल होने लगा।

अुसने अपने नीरव आँसुओंमें अस्फुट शब्द गूँथ-गूँथकर मुझे यह समझानेका प्रयत्न किया कि वह अपने बच्चेको नहीं देना चाहती। यदि अुसके दादाजी राज़ी न हों तो मैं अुसके लिअे अैसा प्रबन्ध कर दूँ, जिससे अुसे दिनमें अेक बार दो रूखी-सूखी रोटियाँ मिल सकें। कपड़े वह मेरे अुतारे ही पहन लेगी और कोअी विशेष खर्च अुसका नहीं है। फिर जब बच्चा बड़ा हो जायगा, तब जो काम मैं अुसको बता दूँगी वही तन-मनसे करती-करती वह जीवन बिता देगी।

पर जबतक वह फिर कोअी अपराध न करे तबतक मैं अपने अूपर अुसका वही अधिकार बना रहने दूँ, जिसे वह मेरी लड़कीके रूपमें पा सकती थी। अुसके माँ नहीं हैं, अिसीसे अुसकी अितनी दुर्दशा सम्भव हो सकी—अब यदि मैं अुसे माँकी ममता-भरी छाया दे सकूँ तो वह अपने बालकके साथ कहीं भी सुरक्षित रह सकेगी।

अुस बालिका-माताके मस्तकपर हाथ रखकर मैं सोचने लगी कि कहीं यह वरद हो सकता ! अिस पतझरके युगमें समाजके फूल चाहे न मिल सकें, पर धूलकी किसी स्त्रीको भी कमी नहीं रह सकती, अिस सत्यको यह रक्षाकी याचना करनेवाली नहीं जानती। पर २७ वर्षकी अवस्थामें मुझे १८ वर्षीया लड़की और २२ दिनके नातीका भार स्वीकार करना ही पड़ा।

वृद्ध अपने सहानुभूति-हीन प्रान्तमें भी लौट जाना चाहते थे, अुपहास-भरे समाजकी विडम्बनामें भी शेष दिन बितानेको अिच्छुक थे और व्यंग-भरे क्रूर पड़ोसियोंसे भी मिलनेको आकुल थे, परन्तु मनुष्यताकी अूँची पुकारमें यह संस्कारके क्षीण स्वर दब गअे।

अब आज तो वे किसी अज्ञात लोकमें हैं। मलयके झोंकेके समान मुझे कण्टक-वनमें खींच लाकर अुन्होंने जो दो फूलोंकी धरोहर सौंपी थी अुससे मुझे स्नेहकी सुरभि ही मिली है। हाँ, अुन फूलोंमेंसे अेककी शिकायत है कि मैं अुसकी गाथा सुननेका अवकाश नहीं पाती और दूसरा कहता है कि मैं राजकुमारकी कहानी नहीं सुनाती।

---

६. बाबू भगवतीचरण वर्मा

आपका जन्म अुन्नाव ज़िलेके शफीपुर ग्राममें सं. १९६० में हुआ था। आपकी आरंभिक शिक्षा कानपुरमें आर्यसमाजी स्कूलमें हुअी। अुसके अनंतर आपने थियोसोफिकल स्कूलमें शिक्षा पाअी। स्कूलमें पढ़ते समय आपकी रुचि हिंदीकी ओर हुअी थी। कानपुरसे अेफ. अे. पास करनेके बाद आप 'प्रयाग विश्वविद्यालय' में भर्ती हुअे और वहाँसे बी. अे. अेल. अेल. बी. की परीक्षा पास करके कानपुर जाकर वकालत करने लगे।

विद्यार्थी-अवस्थासे आपको ही संगीतसे बड़ा प्रेम था, अुसी संगीत ज्ञानके बलपर आपने तुकबंदियाँ आरंभ की थीं, जो मात्राके विचारसे शुद्ध हुआ करती थीं। आपकी रचनाअें ये हैं :—

कविता—१. मधुकण, २. प्रेम-संगीत, ३. मानव।

अुपन्यास—१. पतन, २. चित्रलेखा, ३. तीन वर्ष, ४. टेढ़े-मेढ़े रास्ते।

कहानी-संग्रह—१. अिंस्टालमेन्ट, २. दो बाँके।

मैं और मेरा युग

मैं यह मानता हूँ कि महान् कलाकार युगका निर्माता हुआ करता है; पर मैं यह माननेको तैयार नहीं कि मैं अुस अूँचाअीपर पहुँच चुका हूँ जहाँसे मैं यह कह सकूँ कि मैं युग-निर्माता हूँ। मुझे अपने अूपर विश्वास है, पर मैं अभी बननेके क्रममें हूँ, यह मेरी साधनाका आदि-काल है।

आज मैं जब कलवाले निजत्वपर विचार करता हूँ, तब मुझे आश्चर्य होता है। मेरा संसार बदल गया है, मेरा दृष्टिकोण बदल गया है, मैं बदल गया हूँ। कलवाली कल्पनाअें, कलवाले सपने— ये सबके-सब न जाने कहाँ गायब हो गये; आज वास्तविकताकी कुरूपतासे जकड़ा हुआ मैं, आजके संघर्षमें अपनेपनको खो चुका हूँ; यही नहीं, यह संघर्ष ही अपनापन बन चुका है।

राजनीतिसे मुझे अरुचि रही है, राजनीतिकी अेक महान् आत्मा श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थीके प्रभावमें पला हुआ मैं राजनीतिसे दूर भागता रहा हूँ—और अपनी अिस राजनीतिकी अुपेक्षाको कभी-कभी स्वयं मैंने अपनी कायरता समझा है। पर आज मैं जब अपने अतीतपर सिंहावलोकन करता हूँ—आज जब मैं सोचता हूँ कि किस प्रकार अपना मस्तक अूँचा करके मैं भूख और बेकारीसे

लड़ा हूँ, किस प्रकार मैंने आत्मसम्मान और 'अपनेपन' की रक्षा की है, तब मुझे कुछ शान्ति मिलती है। दुनियामें मैंने अभीतक दुनियावालोंकी नज़रमें खोया ही है, पाया कुछ नहीं; पर अपनी नज़रमें मैंने अेक महान् अनुभव पाया है, और मैं समझता हूँ कि मैं जीवनके सत्यके बहुत निकट पहुँच चुका हूँ।

'जीवनके सत्यके बहुत निकट पहुँच चुका हूँ', अिस बातपर लोग मेरी हँसी अुड़ा सकते हैं, आजका हरेक विचारक यही कहता है। जर्मनीका हिटलर यही कहता है, रूसका स्टैलिन यही कहता है, अिंग्लैंडका चेम्बरलेन यही कहता है, फ्रांसका दलादिये यही कहता है—और जीवनका सत्य पा जानेवाले ये विद्वान् बुरी तरह अेक दूसरेको मारनेपर तुले हुअे हैं। ये लोग पशुतामें जीवनके सत्यको पाना चाहते हैं, मानवताका गला घोंटकर; अपने-पनको नष्ट करके पशु बन जानेपर तुले हुअे हैं।

मैं अहम्‌का अुपासक रहा हूँ; मेरे अूपर हिन्दीके आलोचकोंका आक्षेप रहा है कि मैं कहीं भी अेक क्षणके लिये अहम्‌के अूपर नहीं आ सका हूँ मुझे हिन्दीके आलोचकोंसे शिकायत नहीं—'अहम्' नामकी चीज़ गुलामोंमें नहीं मिल सकती—वे 'अहम्' की महत्ताको जानते ही नहीं। और यहाँपर मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि दुनियामें आजतक कोअी अहम्‌के अूपर न अुठ सका है और न अुठ सकता है। 'अहम्' अस्तित्व है; जो यह कहता है कि अुसने 'अहम्' को मिटा दिया है—या जो कहता है कि 'अहम्' को मिटा देनेमें ही अपना कल्याण है,

वह या तो दुनियाको धोखा देता है या अपनेको धोखा देता है। दुनियामें आज नग्न रूपमें आगे आनेवाली समाजवादकी असफलताका मुख्य कारण यह है कि वह समाजके हितके लिये 'अहम्' को मिटा देनेवाले सिद्धान्तपर विश्वास करता है, जब कि यह सिद्धान्त अस्तित्वके बुनियादी सिद्धान्तका विरोधी है।

और फिर भी मैं यह कहता हूँ कि दुनियाकी अिन अुलझनोंका कारण 'अहम्' है। अैसी हालतमें मुझसे यह प्रश्न किया जा सकता है कि फिर ये अुलझनें दूर कैसे होंगी? मैंने भी अपनेसे अेक वार यही प्रश्न पूछा है। और मैंने ही यह अुत्तर दिया है— 'अहम्' को असीमत्व प्रदान करके।

"अहम्को असीमत्व प्रदान करके!" अिसे स्पष्ट करना पड़ेगा। मैं यह माननेवाला हूँ कि अपना हित अपना सत्य है। हम जो काम करते हैं अुसके दो पहलू होते हैं, अेक निजी (सबजेक्टिव) और दूसरा परोक्ष (ऑबजेक्टिव)। हमारे कामका निजी पहलू अपना सत्य है, वह न बुरा है न भला है; वह प्राकृतिक है, वह अपनेको तुष्ट करना है। 'अहम्' अस्तित्व है—'अहम्' को तुष्ट करना जीवन है। दूसरोंका खून चूसकर कौड़ी-कौड़ी अिकट्ठा करके महल बनानेवाला शोषक अपनी अेक आन्तरिक भावनासे प्रेरित होकर ही यह करता है और लाखों रुपयेका दान करनेवाला भी अपनी अेक आन्तरिक भावनासे प्रेरित होकर ही दान करता है। दोनों ही वरावर हैं—अगर अुसको तुष्टि न मिलती तो वह शोषक कभी भी खून न चूसता, और अगर

अुसे तुष्टि न मिलती तो वह दानी कभी भी दान न करता। अिन दोनोंमें ही अपनेको तुष्ट करनेकी प्रवृत्ति है। मनुष्य मात्रके लिये अपना हित अपना सत्य है।

और दूसरोंका हित मानवताका सत्य है। और, अिसी मानवताके सत्यमें हमारे कर्मोंका परोक्ष (ऑबजेक्टिव) पहलू आता है। हमारे हर कामका असर दूसरोंपर पड़ा करता है; हमारे जिस कामका असर दूसरोंके लिये हितकर है, वह मानवताकी दृष्टिसे अच्छा है; जिस कामका असर दूसरेके लिये अहितकर है; वह मानवताकी दृष्टिसे बुरा है।

हम अपने लिये जीते हैं अवश्य, पर हमारा जीवन दूसरोंसे सम्बद्ध है। हर-अेक पशु अपने लिये जीता है, और वह केवल अपने लिये ही जीता है—दूसरोंकी अुसे ज़रा भी चिन्ता नहीं। हम पशुतासे अूपर अुठे हुअे मनुष्य हैं, हमें दूसरोंसे सम्बद्ध जीना है। सीमित और संकुचित 'अहम्' पशुताके निकट और मानवतासे दूर है; अुस 'अहम्' को हमें विकसित करना है। हममें कोमल और कल्याणकारी प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं। हम अुन्हें विकसित कर सकते हैं, क्योंकि दूसरोंके सुखमें सुख पानेकी अेक दबी हुअी अन्तःप्रेरणा हर मनुष्यमें है। अपने बच्चोंको, अपने घरवालोंको, अपने पड़ोसियोंको, अपने नगरवासियोंके सुखसे ही सुखी होनेवाले मनुष्य अक्सर दिख जाया करते हैं। और अिन लोगोंमें अेक निजत्वकी प्रबल भावना रहती है।

'अहम्' को अितना अधिक विकसित करना कि वह सारी दुनियाको ढक ले; सारी दुनियाको निजत्वके अन्दर कर लेना—यही

'अहम्' को असीमत्व प्रदान करना है। अपना हित अपना सत्य है, दूसरोंका हित मानवताका सत्य है—अपने सत्य और मानवताके सत्यको अेकरूप कर देना ही 'अहम्' को असीमत्व प्रदान करना है।

× × ×

मैं बुद्धिवादी हूँ, मेरा देवता है ज्ञान; और अिस देवताके अलावा मुझे किसी देवतापर विश्वास नहीं। मनुष्यको पशुसे पृथक् करनेवाली चीज़ है बुद्धि; और बौद्धिक विकास ही मानवताका चरम विकास है। यह बुद्धि हमें मिली है, अिसको हमें विकसित करना है। बुद्धिके अूपर मेरे लिये कोअी दूसरी चीज़ नहीं।

रहस्यवादपर विश्वास करनेवाले मेरे अेक साहित्यिक मित्रने मुझसे अेक-बार कहा था—"बुद्धि बहुत नीचे स्तरकी चीज़ है; विश्वके अनन्त रहस्य केवल अनुभव किअे जा सकते हैं—बुद्धिके अूपर अुठकर हमें अुनसे परिचय प्राप्त करना होगा, वहाँ बुद्धिकी पहुँच नहीं।" और अुसपर मैंने अुनसे केवल अितना कहा था कि जहाँ आप "बुद्धि" कहते हैं वहाँ आप "मेरी बुद्धि" कह दें, तो मुझे कोअी आपत्ति नहीं होगी।

मनुष्य बौद्धिक विकासके क्रममें है, अुसकी बुद्धि अर्ध-विकसित है। मैं मानता हूँ कि बुद्धि-द्वारा मैं अनेक चीज़ोंको नहीं समझ सकता; पर अुसमें बुद्धिका दोष नहीं है, अपनी अपूर्णताका दोष है। मेरी बुद्धि अितनी अधिक विकसित नहीं कि मैं अुसके द्वारा चीज़ोंको समझ सकूँ! पर हम अपनी पराजय

स्वीकार करनेको तैयार नहीं, अपनी कुरूपताओंके प्रति जबर्दस्ती आँखें बन्द कर लेनेकी हममें अेक अति कुरूप प्रवृत्ति है। और अिसलिये हम अपने दोषको, अपनी कमज़ोरीको बुद्धिका दोष और बुद्धिकी कमज़ोरी कह देते हैं।

बुद्धिवादी होनेके कारण न मुझे धर्मपर विश्वास है, न अुपासनापर। मैं समझता हूँ कि मनुष्य केवल बुद्धि-द्वारा पूर्णता प्राप्त करेगा।

प्राणिमात्रमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है, सर्वविकसित है। अनादि-कालसे पुरुष और प्रकृतिका अनवरत युद्ध चला आ रहा है। पुरुष अपनी बुद्धिद्वारा प्रकृतिके अनन्त रहस्योंको अेक-अेक कर सुलझाता आ रहा है। वैज्ञानिक अुन्नति अिसका ज्वलन्त अुदाहरण है। अुसने प्रकृतिको बलपूर्वक अपने वशमें कर लिया है; और यही प्रकृति अुसकी असावधानीके कारण समय-समयपर अुससे भयानक बदला भी ले लिया करती है। पुरुष प्रकृतिको अपने ही विनाशका साधन बना लेता है। और अिसका मुख्य कारण यह है कि जहाँ पुरुष प्रकृतिको जीत रहा है, वहाँ वह अपनी पशुताको नहीं जीत पाया है।

जीवन कर्म है, कर्म बिना भावना असम्भव है; अिसलिये भावना जीवन है। बुद्धि केवल नियन्त्रण करती है। पर अभीतक हमारी बुद्धि हमारी भावनाका नियन्त्रण नहीं कर सकी। हममें हमारी पशुतावाली हिंसाकी कुरूपता अभीतक मौजूद है; बुद्धिने अुसे थोड़ा-सा दबाया अवश्य है; पर अुसे पूर्ण रूपसे वशमें नहीं कर सकी, और वह समय-समयपर अुभड़कर

सर्वजयी बुद्धिको अपना साधन बनाकर महानाशका ताण्डव-नृत्य किया करती है।

पूर्ण विकासके लिये यह ज़रूरी है कि मानव स्वयं अपनेपर विश्वास करे। पूर्ण विकासकी ओर बढ़नेवाला मनुष्य कर्ता है, स्वामी है। दूसरोंपर अवलम्बित होनेकी प्रवृत्ति गुलामीकी प्रवृत्ति है। भक्ति असमर्थता और पराजयकी प्रतिक्रिया है, दूसरेपर विश्वास अपने अूपर विश्वासका नकारात्मक रूप है। अपनी विवशताके अर्थ हैं अपनी कमज़ोरी, और हमें बुद्धिद्वारा अपनी कमज़ोरीसे लड़ना है।

यह युग जटिल समस्याओंका युग है। अपनेद्वारा पैदा की गयी अुलझनोंमें हम बुरी तरह अुलझ गये हैं। अपनी खुदीने बुद्धिको साधन बना लिया है, आज अुचित-अनुचितके नियमोंसे हमारे कर्म शासित तो होने लगे हैं, पर खुदीसे भरे हुअे मनुष्यने अपने कर्मोंके औचित्यको सिद्ध करनेके लिये बुद्धिका अनुचित प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। दूसरोंको धोखा देते-देते हम स्वयं अपनेको धोखा देने लग गये हैं।

और मुझे पेंच-दावकी बातोंसे अुलझन होती है। मैं देखता हूँ कि हमारे साहित्यमें दुरूहता और अस्पष्टता बुरी तरह घुस गये हैं। मैं अपने साहित्यिकोंको अिसके लिये अधिक दोष नहीं देता; हमारे साहित्यिक पाश्चात्य विचार-धारासे बुरी तरह प्रभावित हैं। दूसरोंके विचारोंको पढ़ भागना या सुन भागना—यह अेक भयानक कमज़ोरी है, जिसके हमारे साहित्यिक शिकार हैं। अुन्होंने

स्वयं न अनुभव किया है और न मनन किया है। अपनी महत्वाकांक्षा और अपने मनकी सँकरी परिधि ही में केन्द्रित हमारे आजके साहित्यिक 'आज' को ठीक तरह देख नहीं पाते।

मैं यह मानता हूँ कि साहित्यका काम है, सृजन---और सृजनमें नवीनता होनी चाहिये। पर नवीनताके अर्थ दुरूहतासे भरी विचित्रता हो सकती है, यह माननेको मैं कभी भी तैयार नहीं। साहित्य युगका प्रतिनिधित्व करता है। साहित्यका काम है मानसिक सृजन, और अिस मानसिक सृष्टिको आधार बनाकर समाज अपनी गति-विधि निर्धारित करता है। पर वास्तविक कलाकार युगमें दो-अेक ही होते हैं, यद्यपि कलाकार बननेकी अभिलाषा अनेकोंमें होती है। कलाकी साधना सारे जीवनकी साधना है, जहाँ व्यक्ति अपनेको कलामें मिला देता है। और दो दिनमें कलाकार बननेकी अिच्छा रखनेवालोंके लिये अेक ही अुपाय है—लोगोंको चकित करके अुनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना। यह पेंच-दाव और दुरूहतासे भरी हुअी विचित्रता कलाकारमें साधना और अपने अूपर विश्वासकी कमीको ही प्रदर्शित करती है।

यही नहीं; वह प्रवृत्ति जो अेक समय करोड़ों अपढ़ भक्तोंसे साधुओं और पण्डोंकी गुलामी करवाती थी, आज हमारे अनेक शिक्षित नवयुवकोंसे पाश्चात्य विचारकोंकी गुलामी करवा रही है; और अुन पाश्चात्य विचारकोंकी नकल करनेवाले अुन नवयुवकोंमें भी अनेक विचारक पैदा हो गये हैं, जो अेक-दूसरोंके विचार तो क्या स्वयं अपने विचारतक नहीं समझ पाते हैं।

और अिन समस्याओंके, अिन विचारोंके जालमें फँसकर हम वास्तविक जीवनसे कितना दूर हट गये हैं! अिन समस्याओं और विचारोंने आज दुनियाको पीड़ित कर रक्खा है—अेक भयानक अुथल-पुथल, अेक भयानक कुरूपता हमारे जीवनमें घुस गयी है। साहित्य सौंदर्यके सृजनपर विश्वास करता है। कुरूपताका सृजन अकल्याणकारी है। हमें जीवनके वास्तविक सौंदर्यको देखना है, हमें आजकी विषमतावाली कुरूपतासे अूपर अुठना है। सीधी-सादी बात, सीधा-सादा विचार—पशुता और मानवताके भेदको समझ लेता है। मानवके अन्दरवाली पशुतासे भरी हिंसाको हमें दूर करना है—अपने हृदयको हमें बराबर बदलते रहना है। लम्बी-लम्बी बातोंकी, लम्बे-लम्बे सिद्धान्तकी हमें जरूरत नहीं है। मैं तो केवल अेक बात जानता हूँ—साहित्य कुरूपताके प्रति मनुष्यमें ग्लानि अुत्पन्नकर सुन्दरताके प्रति मनुष्यमें आकर्षण अुत्पन्न कर सकता है।

आज मानवताके सामने अेक प्रश्न अुठ खड़ा हुआ है: 'क्या हिंसा कल्याणकारी हो सकती है?' हम सब विषमताको दूर करना चाहते हैं; हम सब मानव जातिको सुखी देखना चाहते हैं। पर क्या अुसका साधन हिंसा है या अहिंसा है? विश्वका अितिहास हिंसा-द्वारा परिवर्तन लानेके प्रयोगोंसे भरा पड़ा है, और हर जगह असफलता ही नजर आअी है! हम अिसका अुत्तर दया, प्रेम और त्यागमें ही पा सकते हैं। क्या साहित्य अिसमें हमारी—मानव-समाजकी मदद करेगा?

× × ×

यह मेरा युग है—मैं अिस युगका हूँ। मैं अपनेको अिस युगसे पृथक् कब कर सकता हूँ? मैं मनुष्य हूँ—मेरा अस्तित्व मानवताका अस्तित्व है! अपनी जिम्मेदारी मैं देख रहा हूँ—आजकी अुलझनमें मेरी अुलझनें हैं—और मेरा कर्तव्य है कि मैं अुन अुलझनोंको सुलझानेमें कुछ सहायता करूँ।

जो कहो वह विश्वासके साथ, निर्भय होकर, स्पष्ट और कामकी बात।—बराबर यह बात मेरा अन्तर मुझसे कहता रहता है—और मैं वही कहता भी हूँ। मैं विद्वान् नहीं हूँ; होना भी नहीं चाहता। वह विद्वत्ता जो मानवीय सतहसे अलग है—अुसपर मुझे विश्वास नहीं। अपने साहित्यिक मित्रोंको मैं विवाद करते देखता हूँ; ज़रा-ज़रा-सी बातोंपर बालकी खाल वे निकालते हैं; और फिर अपना मत समर्थन करनेके लिये लम्बे-लम्बे लेख लिख डालते हैं। मुझे अिस सबपर हँसी आती है। मैं देख रहा हूँ—रास्ता सीधा है, प्रश्न अेक है—'हमें मानवताके विकासमें सहायक होना है। हम किस प्रकार सहायक हो सकते हैं?'

---

७. पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी

आधुनिक हिंदी साहित्यके सर्वश्रेष्ठ प्रचारक और पोषक। 'सरस्वती' की सहायतासे भाषाके शिल्पी, विचारोंके प्रचारक तथा साहित्यके शिक्षक। तीन तीन संस्थाओंके संचालनका अुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य अुन्होंने स्वेच्छासे अुठाया तथा सम्मान और सफलताके साथ निभाया।

द्विवेदीजीकी साहित्य-सेवाका पुनीत आदर्श हिंदी भाषाका प्रचार करना था। अिसीसे हिंदीकी अनस्थिर लेखन-शैलीको स्थिरता प्रदान करने, भाषा-संस्कार, भाषाकी काट-छाँट, व्याकरणके नियमोंकी प्रतिष्ठा, वाक्य-विन्यासकी व्यवस्था आदिके साथ हिंदीको साधारण बोलचालकी भाषाके निकट लाकर अुसमें विचारोंके प्राण फूँकनेका भगीरथ प्रयत्न अुन्होंने किया। प्रेरणा और प्रोत्साहन के द्वारा अनेकानेक नवीन लेखकों का अुन्होंने अुत्साह बढ़ाया। अंग्रेजीकी ओर झुके हुअे हिंदीभाषा-भाषियोंको हिंदीकी ओर खींचा। अन्य भाषाओंसे ढूँढ़-ढूँढ़कर रत्न निकाले और अुनसे हिंदीका सिंहासन सुसज्जित किया।

द्विवेदीजीकी शैली भिन्न भिन्न प्रकारकी है। अिसका कारण यह है कि द्विवेदीजी जहाँ लेखक थे वहाँ आलोचक भी थे। जहाँ वे अपनी गवेषणाके लिये प्रसिद्ध थे, वहाँ अुन्होंने व्यंग्यात्मक निबंधोंमें भी अत्यंत ख्याति प्राप्त की थी। अुनकी भाषा अधिक संयत और शक्तिशालिनी है। भाषाकी सरलता और सुबोधता अुनकी शैलीकी विशेषता है।

रचनाअें:—पद्य—'कुमार संभवसार', 'कविता-कलाप' (संपादित); 'सुमन'।
गद्य—बेकनविचार-रत्नावली; नैषधचरितचर्चा, शिक्षा, स्वाधीनता, हिंदीभाषाकी अुत्पत्ति; हिंदी महाभारत, संपत्तिशास्त्र, आलोचनाञ्जलि, विदेशी विज्ञान, रसज्ञरंजन, चरित्र-चित्रण, समालोचना समुच्चय, सुकवि संकीर्तन, साहित्य संदर्भ, साहित्य-सीकर आदि लेखोंके संग्रह।

दंडदेवका आत्मनिवेदन

हमारा नाम दण्ड-देव है। पर हमारे जन्मदाताका कुछ भी पता नहीं। कोअी कहता है कि हमारे पिताका नाम वंश या बाँस है। कोअी कहता है नहीं; हमारे पूज्यपाद पितृमहाशयका नाम काष्ठ है। अिसमें भी किसी किसीका मत-भेद है; क्योंकि कुछ लोगोंका अनुमान है कि हमारे बापका नाम बेत है। अिसीसे हम कहते हैं कि हमारे जन्मदाताका नाम निश्चय-पूर्वक कोअी नहीं बता सकता। हम भी नहीं बता सकते। सबके गर्भ-धारिणी माता होती है; हमारे वह भी नहीं। हम तो जमींतोड़ हैं। यदि माता होती तो अुससे पिताका नाम पूछकर अवश्य ही प्रकट कर देते। पर क्या करें, मजबूरी है। न बाप, न माँ। अपनी हुलिया यदि हम लिखाना चाहें तो कैसे लिखावें। अिस कारण हम सिर्फ अपना नाम ही बता सकते हैं।

हम राज-राजेश्वरके हाथसे लेकर दीन-दुर्बल भिखारीतकके हाथमें विराजमान रहते हैं। जराजीर्णोंके तो अेकमात्र अवलंब हमीं हैं। हम अितने समदर्शी हैं कि हममें भेदज्ञान जरा भी नहीं, धार्म्मिक-अधार्म्मिक, साधु-असाधु, काले-गोरे सभीका पाणि-स्पर्श हम करते हैं। यों तो हम सभी जगह रहते हैं, परन्तु अदालतों और स्कूलोंमें तो हमारी ही तूती बोलती है। वहाँ हमारा अनवरत आदर होता है।

संसारमें अवतार लेनेका हमारा अुद्देश्य दुष्ट मनुष्यों और दुर्वृत्त बालकोंका शासन करना है। यदि हम अवतार न लेते तो ये लोग अुच्छृंखल होकर मही-मण्डलमें सर्वत्र अराजकता अुत्पन्न कर देते। दुष्ट हमें बुरा बताते हैं; हमारी निंदा करते हैं; हमपर झूठे-झूठे आरोप लगाते हैं। परन्तु हम अुनकी कटूक्तियों और अभिशापोंकी ज़रा भी परवा नहीं करते। बात यह है कि, अुनकी अुन्नतिके पथ-प्रदर्शक हमीं हैं। यदि हमीं अुनसे रूठ जायँ तो वे लोग मार्ग-भ्रष्ट हुअे बिना न रहें।

विलायतके प्रसिद्ध पंडित जानसन साहबको आप शायद जानते होंगे। ये वही महाशय हैं, जिन्होंने अेक बहुत बड़ा कोष, अंग्रेजीमें लिखा है और विलायती कवियोंके जीवन-चरित, बड़ी बड़ी तीन जिल्दोंमें भरकर, चरित-रूपिणा त्रिपथगा प्रवाहित की है। अेक दफे यही जानसन साहब कुछ भद्र महिलाओंका मधुर और मनोहर व्यवहार देखकर बड़े प्रसन्न हुअे। अिस सुन्दर व्यवहारकी अुत्पत्तिका कारण खोजनेपर अुन्हें मालूम हुआ कि अिन महिलाओंने अपनी अपनी माताओंके कठिन शासनकी कृपा ही से अैसा भद्रोचित व्यवहार सीखा है। अिसपर अुनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—

"Rod I will honour Thee for this thy duty"

अर्थात् "हे दण्ड, तेरे अिस कर्तव्य-पालनका मैं अत्यधिक आदर करता हूं।" जानसन साहबकी अिस अुक्तिका मूल्य आप कम न समझिये। सचमुच ही हम बहुत बड़े सन्मानके पात्र हैं; क्योंकि हमीं तुम लोगोंके—मानव-जातिके—भाग्य-विधाता और नियंता हैं।

संसारकी सृष्टि करते समय परमेश्वरको मानव-हृदयमें अेक अुपदेष्टाके निवासकी योजना करनी पड़ी थी। अुसका नाम है विवेक। अिस विवेक हीके अनुरोधसे मानव-जाति पापसे धर-पकड़ करती हुअी आज अिस अुन्नत अवस्थाको प्राप्त हुअी है। अिसी विवेककी प्रेरणासे मनुष्य अपनी आदिम अवस्थामें हमारी सहायतासे पापियों और अपराधियोंका शासन करते थे। शासनका प्रथम आविष्कृत अस्त्र, दण्ड, हमीं थे। परन्तु कालक्रमसे हम अब नाना प्रकारके अुपयोगी आकारोंमें परिणत हो गअे हैं। हमारी प्रयोग-प्रणालीमें भी अब बहुत कुछ अुन्नति, सुधार और रूपांतर हो गया है।

पचास-साठ वर्षके भीतर अिस संसारमें बड़ा परिवर्तन—बहुत अुथल-पुथल—हो गया है। अुसके बहुत पहले भी, अिस विशाल जगत्‌में, हमारा राजत्व था। अुस समय भी रूसमें आज-कल ही की तरह, मार-काट जारी था। पोलैंडमें यद्यपि अिस समय हमारी कम चाह है, पर अुस समय वहाँकी स्त्रियोंपर रूसी सिपाही मनमाना अत्याचार करते थे और बार बार हमारी सहायता लेते थे। चीनमें तब भी वंश-दंडका अटल राज्य था। टर्कीमें तब भी डंडे चलते थे। स्यामवासियोंकी पूजा तब भी लाठी ही से की जाती थी। अफरीकासे तब भी मंबो-जंबो (गैंडेकी खालका हंटर) अंतर्हित न हुआ था। अुस समय भी वयस्क भद्र महिलाओंपर चाबुक चलता था। पचास-साठ वर्ष पहले, संसारमें, जिस दंड-शक्तिका निष्कंटक साम्राज्य था, यह न समझना कि अब अुसका तिरोभाव हो गया है।

प्राचीन कालमें रोम-राज्य यूरोपकी नाक समझा जाता था। दण्ड-दान या दण्ड-विधानमें रोमने कितनी अुन्नति की थी, यह बात शायद सब लोग नहीं जानते। अुस समय हम तीन भाअी थे। रोमवाले साधारण दण्डके बदले कशा-दण्ड (हंटर या कोड़े) का अुपयोग करते थे। अिसी कशा-दण्डके तारतम्यके अनुसार हमारे भिन्न-भिन्न तीन नाम थे। अिनमेंसे सबसे बड़ेका नाम फ्लैगेलम (Flagellum) मझलेका सेंटिका (Sentica) और छोटेका फेरूला (Ferula) था। रोमके न्यायालय और वहाँकी महिलाओंके कमरे हम अिन्हीं तीनों भाअियोंसे सुसज्जित रहते थे। अपराधियोंपर न्यायाधीशोंकी असीम क्षमता और प्रभुता थी। अनेक बार प्रभु या प्रभु-पत्नियाँ, दयाके वशवर्ती होकर, हमारी सहायतासे अपने दासोंके दुःखमय जीवनका अंत कर देती थीं। भोजके समय, आमंत्रित लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये, दासोंपर कशाघात करनेकी पूर्ण व्यवस्था थी। दासियोंको तो अेक प्रकारसे नंगी ही रहना पड़ता था। वस्त्राच्छादित रहनेसे वे शायद कशाघातोंका स्वाद अच्छी तरह न ले सकें। अिसी लिये अैसी व्यवस्था थी। यहींपर तुम हमारे प्रभावका कहीं अंत न समझ लेना। दासियोंको अेक और भी अुपायसे दण्ड दिया जाता था। छतकी कड़ियोंसे अुनके लम्बे लम्बे बाल बाँध दिअे जाते थे। छतसे लटक जानेपर अुनके पैरोंसे कोअी भारी चीज़ बाँध दी जाती थी, ताकि वे पैर न हिला सकें। यह प्रबंध हो चुकनेपर अुनके अंगोंकी परीक्षा करनेके लिये हमारी योजना होती थी। यह सुनकर शायद तुम्हारा दिल दहल अुठा होगा और तुम्हारा बदन काँपने लगा होगा। पर हम तो

बड़े ही प्रसन्न हैं। अैसा ही दण्ड दासोंको भी दिया जाता था। परन्तु बालोंके बदले अुनके हाथ बाँधे जाते थे।

अिससे तुम समझ गये होगे कि रोमकी महिलाअें हमारा कितना आदर करती थीं। परन्तु यह बात वहाँके कर्तृपक्षको असह्य हो अुठी। अुन्होंने कहा—अिस दण्ड-देवका अितना आदर! अुन्होंने हमारी अिस अुपयोगितामें विघ्न डालनेके लिये कअी क़ानून बना डाले। सम्राट् आड्रियनके राजत्वकालमें अिस क़ानूनको तोड़नेके अपराधमें अेक महिलाको पाँच वर्षका देश-निर्वासन दण्ड मिला था। अस्तु।

अब हम जर्मनी, फ्रांस, रूस, अमेरिका आदिका हाल सुनाते हैं। ध्यान लगाकर सुनिअे। अिन सब देशोंके घरों, स्कूलों और अदालतोंमें भी पहले हमारा निश्चल राज्य था। अिनके सिवा संस्कार-घरों (हाअुसेस ऑफ करेक्शन) में भी हमारी षोडशोपचार पूजा होती थी। अिन संस्कार-घरों अथवा चरित्र-सुधार-घरोंमें चरित्र और व्यवहार विषयक दोषोंका सुधार किया जाता था। अभिभावक जन अपनी दुश्चरित्र स्त्रियों और अधीनस्थ पुरुषोंको अिन घरोंमें भेज देते थे। वहाँ वे हमारी ही सहायता—हमारे ही आघात—से सुधारे जाते थे।

जर्मनीमें तो हम अनेक रूपोंमें विद्यमान थे। हमारे रूप थे कशादण्ड, वेत्रदण्ड, चर्मदण्ड आदि। कोतवालों और न्यायाधीशोंको कशाघात करनेके अख़्तियारात हासिल थे। संस्कार-घरोंमें हतभागिनी नारियों ही की संख्या अधिक होती थी। वहाँ बहुधा निरपराधिनी

रमणियोंको भी, दुष्टोंके फँदेमें फँसकर, कशाघात सहने पड़ते थे। पहले वे नंगी कर डाली जाती थीं, तब अुनपर बेत पड़ते थे। जर्मन भाषाके ग्रंथ-साहित्यमें अिस कशाघातका अुल्लेख सैकड़ों जगह पाया जाता है।

फ्रांसमें भी हमने मनमाना राज्य किया है। वहाँके विद्यालयोंमें, किसी समय, हमारा बड़ा प्रभाव था। विद्यालयोंमें कोमल कलेवरा बालिकाओंको भी हमें चूमना पड़ता था। यहाँ तक कि अुन्हें हमारा प्रयोग करनेवालोंका अभिवादन भी करना पड़ता था। फ्रांसमें तो हमने पवित्रहृदया कामिनियोंके कर-कमलोंको भी पवित्र किया था -- "रोमन-डि-लारोज" नामक काव्यमें कविवर क्लपिनेलेने स्त्रियोंके विरुद्ध चार सतरें लिख मारी हैं। अुनका भावार्थ कवि पोपके शब्दोंमें है—"Every woman is at heart a rake"; अिस अुक्तिको सुनकर कुछ सम्मानीय महिलाअें बेतरह कुपित हो अुठीं। अेक दिन अुन्होंने कविको अपने क़ब्जेमें पाकर अुसे सुधारना चाहा। तब यह देखकर कि अिनके पंजोंसे निकल भागना असंभव है, कविने कहा—"मैंने जरूर अपराध किया है। अतअेव मुझे सजा भोगनेमें कुछ भी अुज्र नहीं। पर मेरी अेक प्रार्थना है। वह यह है कि अुस अुक्तिको पढ़कर जिस महिलाको सबसे अधिक बुरा लगा हो वही मुझे पहले दण्ड दे।" अिसका फैसला कोअी स्त्री न कर सकी। फलः यह हुआ कि कवि पिटनेसे बच गया।

रूसमें भी हमारा अधिपत्य रह चुका है। वहाँ तो सभी प्रकारके अपराध करनेपर साधारण दण्ड या कशादण्डसे प्रायश्चित्त

कराया जाता था। क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या राज कर्मचारी, क्या साधारण जन, सभीको—अपराध करनेपर—हमारा अनुग्रह ग्रहण करना पड़ता था। किसान तो हमारी कृपाके सबसे अधिक पात्र थे। अुनपर तो जो चाहता था वही, निश्शंक और निःसंकोच, हमारा प्रयोग करता, था। रूसके अमीरों और धनवानोंसे हमारी बड़ी ही गहरी मित्रता थी। दोष-दमन करनेमें वे सिवा हमारे और किसीकी भी सहायता, कभी भूलकर भी, न लेते थे। अुनका खयाल था कि अपराधियोंको अधमरा करनेके लिये ही भगवानने हमारी सृष्टि की है।

रूसमें तो, पूर्वकालमें, दण्डाघात प्रेमका भी चिन्ह माना जाता था। विवाहिता वधुअें अपने पतियोंसे हमींको पानेके लिये सदा लालायित रहती थीं। यदि स्वामी, बीच-बीचमें, अपनी पत्नीका दण्ड-दान नामक आदर न करता तो पत्नी समझती कि अुसके स्वामीका प्रेम अुसपर कम होता जा रहा है। यह प्रथा केवल नीच या छोटे लोगों ही में प्रचलित न थी, बड़े बड़े घरोंमें भी अिसका पूरा प्रचार था। बर्कले नामके लेखकने लिखा है कि रूसमें दण्डाघातोंकी न्यूनाधिक संख्या ही से प्रेमकी न्यूनाधिकताकी माप होती थी। अिसके सिवा स्नानागारोंमें भी हमारा प्रबल प्रताप छाया हुआ था। स्नान करनेवालोंका समस्त शरीर ही हमारे अनुग्रहका पात्र बनाया जाता था। स्टिफेंस साहबने अिसका विस्तृत विवरण लिख रखा है। विश्वास न हो तो अुनकी पुस्तक देख लीजिअे।

हमारे सम्बन्धमें तुम अमेरिकाको पिछड़ा हुआ कहीं मत समझ बैठना। वहाँ भी हमारा प्रभाव कम न था। बालकों और

बालिकाओंका गार्हस्थ्य जीवन वहाँ हमारे ही द्वारा नियंत्रित होता था। प्यूरिटन नामके क्रिश्चियन-धर्म्म-संप्रदायके अनुयायियोंके प्रभुत्वके समय लोगोंको बात-बातमें कशाघातकी शरण लेनी पड़ती थी। क्वेकर-संप्रदायको देशसे दूर निकालनेमें अमेरिकाके निवासियोंने हमारी खूब ही सहायता ली थी। हमारा प्रयोग बड़े ही अच्छे ढंगसे किया जाता था। काठके अेक तख्तपर अपराधी बाँध दिया जाता था। फिर अुसपर सड़ासड़ बेत पड़ते थे।

अफरीकाकी तो कुछ पूछिअे ही नहीं। वहाँ तो पहले भी हमारा अखंड राज्य था और अब भी है। यही अेक देश अैसा है जिसने हमारे महत्वको पूर्णतया पहचान पाया है। बच्चोंकी शिक्षासे तो हमारा बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। वहाँके लोगोंका विश्वास था कि हमारा आगमन स्वर्गसे हुआ है और हम अीश्वरके आशीर्वाद रूप हैं। हम नहीं, तो समझना चाहिअे कि परमेश्वर ही रूठा है। मिस्रवाले तो अिस प्रवादपर आँख-कान बन्द करके विश्वास करते थे। वहाँके दीन-वत्सल महीपाल प्रजावर्गको अिस आशीर्वादका स्वाद बहुधा चखाया करते थे। अुनकी पीठपर हमारे जितने ही अधिक चिन्ह बन जाते थे वे अपनेको अुतने ही अधिक कृतज्ञ या कृतार्थ समझते थे।

अफरीकाकी असभ्य जातियोंमें स्त्रियोंके अूपर हमारा बड़ा प्रकोप रहता था। ज्यों ही स्वामी अपनी स्त्रीके सतीत्व-रत्नको जाते देखता था त्योंही वह हमारी पूर्ण तृप्ति करके अुस कुल-कलंकिनीको घरसे निकाल बाहर करता था। कभी कभी स्त्रियाँ भी हमारी सहायता से अपने अपने स्वामियोंकी यथेष्ट खबर लेती थीं।

तुम्हारे अेशिया-खण्डमें भी हमारा राज्य दूर दूरतक फैला रहा है। अेशिया कोचक (अेशिया माअिनर) के यहूदियोंमें, किसी समय, हमारी बड़ी धाक थी। वहाँ हमारा प्रताप बहुत ही प्रबल था। अीसाअी धर्म्म फैलानेमें सेंट पाल नामक धर्माचार्य्यने बड़े बड़े अत्याचार सहे हैं। वे ४९ दफे कशाहत और ३ दफे दण्डाहत हुअे थे। बाअिबिलमें हमारे प्रयोगका अुल्लेख सैकड़ों जगह आया है।

चतुर और चाणक्ष चीनके अद्भुत क़ानूनकी बात कुछ न पूछिअे। वहाँ अपराधके लिअे अपराधी ही जिम्मेदार नहीं। अुसके दूर तकके संबंधी भी जिम्मेदार समझे जाते थे। जो लोग अिस जिम्मेदारीका ख़याल न करते थे अुन्हें स्वयं हम पुरस्कार देते थे। चीनमें अेक सौ परिवारोंके पीछे अेक मण्डलकी स्थापना होती थी। अुसकी जिम्मेदारी भी कम न होती थी। यदि कोअी व्यक्ति अपने फिरकेके सौ कुटुम्बोंका कोअी अपराध करता तो अुसके बदलेमें मण्डल सज़ा पाता था। देव-सेवाके लिअे रखे गअे शूकर-शावक बीमार या दुबले हो जाते तो प्रति शावकके लिअे तत्वावधायकपर पचास डंडे लगते थे।

चीनकी विवाह-विधिमें भी हमारी विशेष प्रतिपत्ति थी। पुत्र-कन्याकी सम्मति लिअे बिना ही अुनका पहला पाणिग्रहण करनेका अधिकार माता-पिताको प्राप्त था। परन्तु दूसरा विवाह वे न करा सकते थे। यदि वे अिस नियमका अुल्लंघन करते तो अुनपर तड़ातड़ अस्सी डंडे पड़ते थे। विवाह-संबंध स्थिर करके यदि कन्याका पिता

अुसका विवाह किसी और वरके साथ कर देता तो अुसे भी अस्सी डंडे खाने पड़ते। जो लोग अशौच-कालमें विवाह कर लेते थे अुनकी पूजा पूरे अेक सौ दण्डाघातोंसे की जाती थी। स्वामीके जीवन-काल ही में जो रमणियाँ सम्राट् द्वारा सम्मानित होतीं, वे, विधवा होनेपर, पुनर्विवाह न कर सकती थीं। यदि कोअी अभागिनी अिस क़ानूनको तोड़ती तो अुसे पुरस्कृत करनेके लिअे हमें सौ बार अुसके कोमल कलेवरका चुंबन करना पड़ता।

ये हुअीं पुरानी बातें। अपना नया हाल सुनाना हमारे लिये, अिस छोटेसे लेखमें, असम्भव है। अब यद्यपि हमारे अुपचारके ढंग बदल गअे हैं और हमारा अधिकार-क्षेत्र कहीं कहीं संकुचित होगया है, तथापि हमारी पहुँच नअी नअी जगहोंमें हो गअी है। आजकल हमारा आधिपत्य केनिया, ट्रांसाल, केपकालनी आदि विलायतोंमें सबसे अधिक है। वहाँके गोरे कृषक हमारी ही सहायतासे हबशी और अन्य देशीय कुलियोंसे बारह बारह सोलह सोलह घंटे काम कराते हैं। वहाँ काम करते करते, हमारा प्रसाद पाकर अनेक सौभाग्यशाली कुली, समयके पहले ही, स्वर्ग सिधार जाते हैं। फीजी, जमाअिका, गायना, मारिशस आदि टापुओंमें भी हम खूब फूल-फल रहे हैं। जीते रहें गन्नेकी खेती करनेवाले गौरकाय विदेशी! वे हमारा अत्याधिक आदर करते हैं; कभी अपने हाथसे हमें अलग नहीं करते। अुनकी बदौलत ही हम कुलियोंकी पीठ, पेट, हाथ आदि अंग-प्रत्यंग छू छूकर कृतार्थ हुआ करते हैं—अथवा कहना चाहिअे कि हम नहीं, हमारे स्पर्शसे वही अपनेको कृतकृत्य

मानते हैं। अंडमान टापूके क़ैदियोंपर भी हम बहुधा ज़ोर-आजमाअी करते हैं। अिधर भारतके जेलोंमें भी, कुछ समयसे, हमारी विशेष पूछ-पाछ होने लगी है। यहाँतक कि पढ़े-लिखे क़ैदी भी हमारे संस्पर्शसे अपना परित्राण नहीं कर सकते। कितने ही असहयोगी क़ैदियोंकी अक़्ल हमींने ठिकाने लगाअी है।

हम और सब कहींकी बातें तो बता गअे, पर अिंगलैंडके समाचार हमने अेक भी नहीं सुनाअे। भूल हो गअी। क्षमा कीजिअे। खैर तब न सही, अब सही। सदमें अब हम भारतवर्षका भी कुछ हाल सुना देंगे। सुनिअे—

लक्ष्मी और सरस्वतीकी विशेष कृपा होनेसे अिंगलैंड अब अुन्नत और सभ्य हो गया है। ये दोनों ठहरी स्त्रियाँ। और स्त्रियाँ बलवानों ही को अधिक चाहती हैं; निर्बलोंको नहीं। सो, बलवान होना बहुत बड़ी बात है। सभ्यता और अुन्नतिका विशेष आधार पशुबल ही है। हमारी अिस अुक्तिको सच समझिअे और गाँठमें मजबूत बाँधिअे। सो, सभ्य और समुन्नत होनेके कारण अिंगलैंडमें अब हमारा आदर कम होता जाता है। तिसपर भी कशादण्डका प्रचार वहाँ अब भी खूब है। कोड़े वहाँ अब भी खूब बरसते हैं। वहाँके विद्यालयोंमें हमारी अिस मूर्तिकी पूजा बड़े भक्ति-भावसे होती है। हमारा प्रभाव घोड़ेकी पीठपर जितना देखा जाता है अुतना अन्यत्र नहीं। अिसके सिवा सेनामें भी हमारा सम्मान अभीतक थोड़ा-बहुत बना हुआ है।

भारतवर्षमें तो हमारा अेकाधिपत्य ही सा है। भारत अपाहिज है। अिसीलिअे भारतवासी हमारी मूर्तिको बड़े आदरसे अपनी छातीसे लगाअे रहते हैं। वे डरते हैं कि कहीं अैसा न हो जो धन-मानकी रक्षाका अेक मात्र बचा-खुचा यह साधन भी छिन जाय। अिसीसे हमपर अुन लोगोंका असीम प्रेम है। भारतवासी असभ्य और अनुन्नत होनेपर भी विलासप्रिय कम हैं। अिसीलिअे और वे ऋषियों और मुनियों द्वारा पूजित हम दण्ड-देवके आश्रयमें रहना ही श्रेयस्कर समझते हैं। शिक्षकोंका बेत या कमची, सवारोंका हंटर, कोचमैनोंका चाबुक, गाड़ीवानोंकी औंगी या छड़ी, शुहदोंके लट्ठ, शौकीन बाबुओंकी पहाड़ी लकड़ी, पुलीसमैनोंके डंडे, बूढ़े बाबाकी कुबड़ी, भँगेड़ियोंके भवानीदीन और लठैतोंकी लाठियाँ आदि सब क्या हैं? ये सब हमारे ही तो रूप हैं। ये सभी शासन-कार्य्यमें सहायक होते हैं। भारतमें अैसे हजारों आदमी हैं जिनकी जीविकाके आधार अेकमात्र हम हैं। थाना नामके देवस्थानोंमें हमारी ही पूजा होती है। हमारी कृपा और सहायताके बिना हमारे पुजारी (पुलिसमैन) अेक दिन भी अपना कर्तव्य-पालन नहीं कर सकते। भारतमें तो अेक भी पहले दर्जेका मेजिस्ट्रेट अैसा न होगा जिसकी अदालतके अहातेमें हमारे अुपयोगकी योजनाका पूरा पूरा प्रबंध न हो। जेलोंमें भी हमारी शुश्रूषा सर्वदा हुआ करती है। अिसीसे हम कहते हैं कि भारतमें तो हमारा अेकाधिपत्य है।

---

८. पाण्डेय बेचन शर्मा 'अुग्र'

आधुनिक समाजका यथातथ्य वर्णन करनेमें 'अुग्र' जी प्रमुख हैं। आपकी राजनीतिक तथा सामाजिक कहानियाँ बड़ी चुभती हुअी होती हैं। जैसा है अुसे वैसा ही कह देनेमें 'अुग्र' जी कभी नहीं हिचकिचाअे। समाजकी बुराअियों और मानव-हृदयकी कमज़ोरियोंके नग्न चित्र खींचनेमें 'अुग्र' जी की अुग्र लेखनी, तमाम विरोधोंके बावजूद, कभी थकी नहीं। अितना ही नहीं, अुन चित्रोंको कभी कभी अितने चटकीले रंगोंमें रंग देते हैं कि लोगोंको अपना कौतूहल तृप्त करनेके लिये अुनकी ओर आकर्षित होना पड़ता है।

अिनकी कवित्वपूर्ण शैली मार्मिक अभिव्यंजनामें सहायता देती है और अिनकी कुशल कला पात्रोंकी स्पष्ट रूप-रेखा प्रस्तुत करती है। अिन दोनोंके सम्मिश्रणसे जो कुछ सामने रखा जाता है वह अद्भुत, आकर्षक तथा सजीव होता है। अिनमें पाठकोंके हृदयमें अभिप्रेत भावोद्रेक करनेकी अद्भुत क्षमता है।

आप ज़ोरदार भाषा लिखते हैं जिसमें बड़ा चटपटापन रहता है। आपकी भाषाकी सबसे बड़ी विशेषता है अुसकी स्वाभाविकता। बनावट, व्यर्थका पांडित्य-प्रदर्शन आदि अुसमें नहीं।

रचनाअें :—कहानी—दोज़खकी आग; अिन्द्रधनुष।
अुपन्यास—चन्द हसीनोंके खुतूत; शराबी; दिल्लीका दलाल; बुधुआकी बेटी आदि।

बुढ़ापा

[१]

लड़कपनके खो जानेपर अुन्मत्त जवानी फूल-फूलकर हँस रही थी, बुढ़ापेके पानेपर फूट-फूटकर रो रही है। अुस 'खोने' में दुःख नहीं, सुख था; सुख ही नहीं स्वर्ग भी था। अिस 'पाने' में सुख नहीं है; दुःख ही नहीं, नरक भी है! लड़कपनका खोना— वाह! वाह! बुढ़ापेका पाना—हाय! हाय!!

लड़कपन स्वर्ग-दुर्लभ सरलतासे कहता था—'मैया, मैं तो चन्द्र खिलौना लैहों।' जवानी देव-दुर्लभ प्रसन्नतासे कहती थी—'दौरमें सागर रहे गर्दिशमें पैमाना रहे।' और 'अंगं गलितं पलितं मुण्डम्' वाला बुढ़ापा, भवसागरके विकट थपेड़ोंसे व्यग्र होकर कहता है—'अब मैं नाच्यौ बहुत, गोपाल!'

कौन कहता है कि जीवनका अर्थ अुत्थान है, सुख है, 'हा-हा-हा-हा' है? यह सब सुफ़ेद झूठ है, कोरी कल्पना है, धोखा है, प्रवंचना है। मुझसे पूछो। मेरे तीन सौ पैंसठ लम्बे-लम्बे दिनों और लम्बी-लम्बी रातोंवाले—अेक, दो, दस, बीस नहीं—साठ वर्षोंसे पूछो। वे तुम्हें, दुनियाके बालकों और जवानोंको,

बतलायेंगे कि जीवनका अर्थ 'वाह' नहीं, 'आह' है; हँसी नहीं, रोदन है; स्वर्ग नहीं, नरक है !

लड़कपनने पन्द्रह वर्षोंतक घोर तपस्या कर क्या पाया ?—जवानीके रूपमें सर्वनाश, पतन ! जवानीने बीस वर्षोंतक, कभी धनके पीछे, कभी रूपके पीछे, कभी यशके पीछे और कभी मानके पीछे दौड़ लगाकर क्या हासिल किया ?—वार्धक्यके लिफ़ाफ़ेमें सर्वनाश, पतन और—और—अब वह बुढ़ापा घण्टों नाक दबाकर, अीश्वर-भजनकर, सिद्धियोंकी साधनामें दत्तचित्त होकर, खननका खज़ाना अिकट्ठा कर, बेटोंकी 'बटालियन' और बेटियोंकी 'बैटरी' तैयार कर कौन-सी बड़ी विभूति अपनी मुट्ठीमें कर लेगा ?—वही सर्वनाश, वही पतन ! मुझसे पूछो, मैं कहता हूँ—और छाती ठोंककर कहता हूँ—जीवनका अर्थ है—'प....त....न' !

रोजकी बात है। तुम भी देखते हो, मैं भी देखता हूँ, दुनिया भी देखती है। प्रातःकाल अुदयाचलके मस्तकपर शोभित दिन-मणि कैसा प्रसन्न रहता है। सुन्दरी अुषासे होली खेल-खेलकर गंगाकी वेलाको, तरंगोंको, मंद मलयानिलको, नीलाम्बरको, दसों दिशाओंको और भगवती प्राचीके अंचलको अुन्मादसे, प्रेमसे और गुलाबी रंगसे भर देता है। अपने आगे दुनियाका नाच देखते-देखते मूर्ख दिवाकर भी अुसी रंगमें रंगकर वही नाच नाचने लगता है। जीवनका अर्थ सुख और प्रसन्नतामें देखने लगता है। मगर....मगर.... ?

रोज़की बात है। तुम भी देखते हो, मैं भी देखता हूँ, दुनिया भी देखती है। सायंकाल अस्ताचलकी छातीपर पतित, मूर्छित दिन-मणि कैसा अप्रसन्न, निर्जीव रहता है। वह गुलाबी लड़कपन नहीं, वह चमकती-दमकती गरम जवानी नहीं, वह ढलता हुआ––कम्पित करोंवाला व्यथित बुढ़ापा भी नहीं। श्री नहीं, तेज नहीं, ताप नहीं, शक्ति नहीं! अुस समय सूर्यको अुसकी दिन-भरकी घोर तपस्या, रसदान, प्रकाशदानका क्या फल मिलता है? सर्वनाश, पतन! अुस पार––क्षितिजके चरणोंके निकट, समुद्रकी हाहामयी तरंगोंके पास––पतित सूर्यकी रक्त-चिता जलती है। माथेपर सायंकाल-रूपी काला चाण्डाल खड़ा रहता है। प्राचीकी अभागिनी बहन पश्चिमा 'आग' देती है। दिशाअें व्यथित रहती हैं, खूनके आँसू बहाती रहती हैं। प्रकृतिमें भयानक गम्भीरता भरी रहती है। पतित सूर्यकी चिताकी लाली से अनन्त ओत-प्रोत रहता है।

अुस समय देखनेवाले देखते हैं, ज्ञानियोंको ज्ञान होता है कि जीवनका असली अर्थ, और कुछ नहीं, केवल सर्वनाश है!

[२]

कोरी बातोंमें दार्शनिक विचार रखनेवालोंकी कमी नहीं। कमी होती है कर्मियोंकी, बातोंके दायरेसे आगे बढ़नेवालोंकी।

जीवनका अर्थ सर्वनाश या पतन है, यह कह देना सहल है। दो-चार अुदाहरण देकर अपनी बातकी पुष्टि कर देना भी कोअी बड़ी बात नहीं; पर पतन या सर्वनाशको आँखोंके सामने

रखकर जीवन-यात्रामें अग्रसर होना, केवल दुरूह ही नहीं, असम्भव भी है।

अुस दिन गली पार कर रहा था कि कुछ दुष्ट लड़कोंकी नज़र मुझपर पड़ी। अुनमेंसे अेकने कहा—

'हट जाओ, हट जाओ! 'हनुमान गढ़ी' से भागकर यह जानवर अिस शहरमें आया है। क्या अजीब शक्ल पाअी है। पूरा 'किष्किन्धावासी' मालूम पड़ता है।'

बस बात लग गअी। बूढ़ा हो जानेसे ही अिंसान बंदर हो जाता है? अितना अपमान? बूढ़ोंकी अैसी अप्रतिष्ठा! झुकी हुअी कमरको कुबड़ीके सहारे सीधी कर मैंने अुन लड़कोंसे कहा—

"नालायक़ो! आज कमर झुक गअी। आज आँखें कम देखने और कान कम सुननेके आदी हो गये हैं। आज दुनियाकी तस्वीरें भूले हुअे स्वप्नकी तरह झिलमिल दिखाअी दे रही हैं। आज विश्वकी रागिनी अतीतकी प्रतिध्वनिकी तरह अस्पष्ट सुनाअी पड़ रही है; मगर हमेशा यही हालत नहीं थी।

"अभी छोकरे हो, लौंडे हो, बच्चे हो, नादान हो, अुल्लू हो। तुम क्या जानो कि संसार परिवर्तनशील है। तुम क्या जानो कि प्रत्येक बालक अगर जीता रहा तो जवान होता है और प्रत्येक जवान, अगर जल्द ख़त्म न हो गया, तो अेक-न-अेक दिन 'हनुमान-गढ़ीका जानवर' होता है? लड़कपन और जवानीके हाथों बुढ़ापेपर जैसे अत्याचार होते हैं यदि वैसे ही अत्याचार बुढ़ापा

भी अुनपर करने लगे तो अीश्वरकी सृष्टिकी अिति हो जाय। बच्चे जन्मते ही मार डाले जायँ। लड़के होश सँभालते ही अपना पेट पालनेके लिये घरसे बाहर निकाल दिये जायँ। संसारसे दादाके मालपर फ़ातिहा पढ़नेकी प्रथा ही अुठ जाय।

"अब भी सौमेंसे निन्यानवे धनी अपने बूढ़े बापोंकी कृपासे गद्दीदार बने हुअे हैं। अब भी हज़ारमें नौ सौ साढ़े-निन्यानवे शौक़ीन जवानोंके भड़कीले कपड़ोंके दाम, कंघी, शीशा, 'ओटो', 'लवेण्डर', 'सोप', 'पाअुडर', पालिश, वेश्याकी फ़र्माअिश और शराबकी बोतलोंके पैसे बूढ़ोंकी गाढ़ी कमाअीकी थैलीसे निकलते हैं। अब भी संसारमें दया, प्रेम, करुणा, और मनुष्यताकी खेतीमें पानी देनेवाला, कमज़ोर हृदयवाला बुढ़ापा ही है, बेवकूफ़ लड़कपन नहीं, मतवाली जवानी नहीं........।

"फिर बूढ़ोंका अितना अपमान क्यों? बुढ़ापेके प्रति अैसी अश्रद्धा क्यों?"

मगर अुन लड़कोंके कानतक मेरी दुहाअीकी पहुँच न हो सकी। सबने अेक स्वरसे ताली बजा-बजाकर, मेरी बातोंकी चिड़ियोंको हवामें अुड़ा दिया।

"भागो! भागो!! हनुमानजी खाँव-खाँव कर रहे हैं। ठहरोगे, तो किटकिटा कर टूट पड़ेंगे, नोच खानेपर अुतारू हो जायँगे।"

लड़के 'हू-हू', 'हो-हो' करते भाग खड़े हुअे। मैं मुग्धकी तरह अुनके अल्हड़पन और अज्ञानकी ओर आँखें फाड़-

फाड़कर देखता ही रह गया। अुस समय अेकाअेक मुझे अुस सुन्दर स्वप्नकी याद आअी, जो मैंने आजसे युगों पूर्व लड़कपन और यौवनके सम्मेलनके समय देखा था। कैसा मधुर था वह स्वप्न !

[३]

अेक बार जुआ खेलनेको जी चाहता है। संसार बुरा कहे या भला—परवाह नहीं। दुनिया मेरी हालतपर हँसे या हजो करे—कोअी चिन्ता नहीं। कोअी खिलाड़ी हो, तो सामने आये। मैं जुआ खेलूँगा।

अेक बार जुआ खेलनेको जी चाहता है। जी चाहता है—अेक ओर मेरा साठ वर्षोंका अनुभव हो, मेरे सफ़ेद बाल हों, झुर्रीदार चेहरा हो, काँपते हाथ हों, झुकी कमर हो, मुर्दा दिल हो, निराश हृदय हो और मेरी जीवन-भरकी गाढ़ी कमाअी हो। सैकड़ों वर्षोंके प्रत्येक सन्‌के हज़ार-हज़ार रुपये, लाख-लाख गिन्नियाँ और गड्डियों नोट अेक ओर हों और कोरी जवानी अेक ओर हो। मैं पाँसे फेंकनेको तैयार हूँ। सब कुछ देकर जवानी लेनेको राज़ी हूँ। कोअी हकीम हो, सामने आये, अुसे निहाल कर दूँगा। मैं बुढ़ापेके रोगसे परेशान हूँ—जवानीकी दवा चाहता हूँ। कोअी डाक्टर हो तो आगे बढ़े, मुँह-माँगा दूँगा !

हर साल वसन्त आता है। बूढ़े-से-बूढ़ा रसाल माथेपर मौर धारण कर ऋतुराजके दरबारमें खड़ा होकर झूमता है। सौरभ-सम्पन्न शीतल समीर मन्द-गतिसे प्रकृतिके कोने-कोनेमें अुन्माद भरता है।

कोयल मस्त होकर 'कूहू-कूहू' करने लगती है। मुहल्ले-टोलेके हँसते हुअे गुलाब—नवयुवक—अुन्मादकी सरितामें सब कुछ भूलकर, विहार करने लगते हैं, खिलखिलाते हैं, धूम-चौकड़ी मचाते हैं, चूमते हैं, चुम्बित होते हैं, लिपटते हैं, लिपटाते हैं—दुनियाके पतनको, अुत्थानको और सर्वनाशको मंगलका जामा पहनाते हैं। और मैं—टका-सा मुँह लिये, कोरी आँखों तथा निर्जीव हृदयसे अिस लीलाको टुकुर-टुकुर देखा करता हूँ।

अुस समय मालूम पड़ता है, बुढ़ापा ही नरक है।

हरसाल मतवाली वर्षा-ऋतु आती है। हरसाल प्रकृतिके प्रांगणमें यौवन और अुन्माद, सुख और विलास, आनन्द और आमोदकी तीव्र मदिराका घड़ा ढुलकाया जाता है। लड़कपन मुग्ध होकर लोट-पोट हो जाता है—'काले मेघ पानी दे!' जवानी पगली होकर गाने लगती है—'आयी कारी बदरिया ना!' और मेरा बुढ़ापा? अभागा अैसे स्वर्गीय सुखके भोगके समय कभी सर्दीके चंगुलमें फँसकर खाँसता-खखारता रहता है, कभी गर्मीके फेरमें पड़कर पंखे तोड़ता है। सामनेकी परोसी हुअी थाली भी हम—अपने दुर्भाग्यके कारण—नहीं खा सकते! तड़प-तड़पकर रह जाते हैं। अुफ़!

अुस समय मालूम पड़ता है, बुढ़ापा ही नरक है!

अिस नरकसे कोअी मुझे बाहर कर दे, युवा बना दे। मैं आजन्म गुलामी करनेको तैयार हूँ। बुढ़ापेकी बादशाहीसे जवानीकी

गुलामी करोड़ दर्जा अच्छी है—हाँ-हाँ, करोड़ दर्जा अच्छी है। मुझसे पूछो, मैं जानता हूँ, मैं भुक्तभोगी हूँ, मुझपर बीत रही है।

कोअी यदु हो, तो अिस बूढ़ेकी सहायता करे। मैं मरनेके पहले अेक बार फिर अुन आँखोंको चाहता हूँ, जिन्हें बात-बातमें अुलझने, लगने, चार होने और फँसनेका स्वर्गीय रोग होता है। अिच्छा है, अेक बार फिर किसीके प्रेममें फँसकर गाअूँ—

"ठाढ़े रहे घनश्याम अुतै, अित
मैं पुनि आनि अटा चढ़ि झाँकी;
जानति हौ तुम हूँ ब्रज रीति
न प्रीति रहै कबहूँ पल ढाँकी;
'ठाकुर' कैसेहू भूलत नाहिंनै
अैसी अरी वा बिलोकनि बाँकी;
भावत ना छिन भौनको बैठिबो
घूँघट कौनको? लाज कहाँकी?"

अिच्छा है, अेक बार फिर किसी मनमोहनको हृदय-दान देकर बैठे-बिठाये दुनियाकी दृष्टिमें व्यर्थ, परन्तु स्वर्गीय पागलपनको सिर चढ़ाकर प्रार्थना करूँ—

"रोज न आअियै जौ मनमोहन,
तौ यह नेक मतौ सुन लीजिये;
प्रान हमारे तुम्हारे अधीन,
तुम्हैं बिनु देखे सु कैसे कै जीजिये;

'ठाकुर' लालन प्यारे सुनौ,
बिनती अितनी पै अहो चित दीजिये;
दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें,
आठवें तौ भला आअिबो कीजिये।"

[४]

मगर नहीं। वार्द्धक्य वह रोग नहीं, जिसकी दवा की जा सके। यह मर्ज़ ला-अिलाज है। यह दर्द-सर अैसा है, कि सर जाअे तो जाअे, पर दर्द न जाअे।

लड़कपनके स्वर्गका विस्मृतिमय अद्वितीय सुख देख चुका। जवानीकी अमरावतीमें विविध भोग-विलास कर चुका। अब बुढ़ापेके नरकमें आया हूँ। भोगना ही पड़ेगा। अिस नरकसे मनुष्यकी तो हस्ती ही क्या है, अीश्वर भी छुटकारा नहीं दिला सकता। बुढ़ापा वह पतन है, जिसका अुत्थान केवल अेक बार होता है—और वह होता है—दहकती हुअी चितापर। हमारे रोगकी अगर दवा है, तो अेक 'जाह्नवीतोयं'। यदि वैद्य है तो अेक—'नारायणोहरिः'।

फिर अब देर काहेकी, प्रभो? दया करो, 'समन' भेजो, जीवनकी रस्सी काट डालो। अब यह नरक भोगा नहीं जाता। भवसागरमें हाथ मारते-मारते थक गया हूँ। मेरा जीवन-दीपक स्नेह-शून्य है, गुण-रहित है, प्रकाश-हीन है। अिसका शीघ्र ही नाश करो, पंचत्वमें लय करो।

फिरसे, नये सिरेसे, निर्माण हो; फिरसे, नये सिरेसे, सृष्टि हो; फिरसे, नये सिरेसे, जन्म हो; फिरसे, नये सिरेसे शैशव हो;

फिरसे, नये सिरेसे, यौवन हो; फिरसे नये सिरेसे भोग हो, विलास हो, सुख हो, आमोद हो, कविता हो, प्रेम हो, पागलपन हो, मानमें अपमान और अपमानमें मान हो ! फिरसे, नये सिरेसे यौवनकी मतवाली अंगूरी- सुरा अैसी छने---अैसे छने ! कि लोक भूल जाय, परलोक भूल जाय, भय भूल जाय, शोक भूल जाय, वह भूल जाय और तुम—अीश्वर—भूल जाओ ! तब जीवनका सुख मिले, तब पृथ्वीका स्वर्ग दिखाअी पड़े ।

फिर, अब देर काहेकी प्रभो ? दया करो, 'समन' भेजो; जीवनकी रस्सी काट डालो !

---

९. पं. श्रीराम शर्मा

आप बड़े साहसी और सुयोग्य लेखक हैं। शिकारी जीवन तथा पर्यटनसे आपको अत्यंत प्रेम है। वनके पशु-पक्षियोंका परिचय प्राप्त करना आपके जीवनका अेक मुख्य ध्येय-सा हो गया है।

हिंदीमें शिकार-साहित्यके निर्माणकर्त्ता पं. श्रीराम शर्मा ही हैं। आप ही ने अपने लेखोंद्वारा हिंदी जनताका ध्यान शिकार-साहित्यकी ओर खींचा। अिस विषयपर आपके सैकड़ों सुन्दर और भावपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

आपकी शैली बड़ी सजीव, भाव-विश्लेषण मनोविज्ञान-सम्मत और भाषा विषयके अनुरूप बड़ी सुघड़ होती है। आपके वर्णन अनूठे होते हैं। आप विषयोंका प्रतिपादन करके अुनका अेक चित्र-सा खड़ा कर देते हैं।

रचनाअें:—बोलती प्रतिमा; शिकार; प्राणोंका सौदा।

बदला

मानव-हृदय महासागरके जलके समान, प्रत्येक देशमें समान ही है। विरोधात्मक भावनाअें तो महासागरकी तरंगोंके समान हैं, जो आपसमें लड़-भिड़ कर फिर अेक हो जाती हैं। ज़ब मानव-समाजका स्रोत अेक है, तब वास्तविक गुण भी अेक हुआ। हाँ, परिस्थितिके कारण सत्, तम और रजके अंशोंमें भेद अवश्यम्भावी है। अवस्था अथवा स्थितिके कारण किसी गुणविशेषका प्राधान्य हो जाता है, अिसीलिअे प्रत्येक समाजमें भले और बुरे दोनों प्रकारके व्यक्ति पाये जाते हैं, और अिसी कारण प्रेम, द्वेष तथा सिद्धान्तके लिये मर-मिटनेकी आकांक्षा और स्त्री-पुरुषका पारस्परिक प्रेम किसी समाजविशेष अथवा देशविशेषकी बपौती नहीं है, और न अिनका सम्बन्ध अमीरी और ग़रीबीसे है। गोरे और काले, पीले और भूरे चमड़ोंके भीतर भगवान्‌की अेक ही निधि—हृदय—छिपी हुअी है। वे लोग बड़ी भूल करते हैं, जो मानव-समाजके मूल स्रोतको भुलाकर बाह्य आडंबरको अूँच-नीचकी कसौटी बनाते हैं।

दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीकाके अुत्तरी भागमें, ज़म्बज़ी नदीके निकटवर्ती प्रदेशमें, मसूबिया नामक अेक अफ्रीकन जाति रहती है। यह जाति अपनी भीरुताके लिअे बदनाम है, पर असभ्य और

कायर कही गयी, मसूबिया जातिके लोग अपने भरण-पोषणके लिअे खंजर और भाले चलानेमें प्रवीण हैं, और शायद सभ्य लोगोंसे कहीं अधिक ओीमानदार हैं। जंगलमें जैसे हिरन, बाघ और बन्दर विहार करते हैं, वैसे ही वे भी वहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक विचरते हैं। परमात्माकी अेक सृष्टि हैं। हाँ, अुन्हें यह नहीं आता कि वे अपने प्रदेश छोड़कर दूसरोंकी रोटी छीनें, अथवा अपने रीति-रिवाजको दूसरोंसे मनवावें। यह काम तो आजकल सभ्य कहलानेवाली जातियोंका ही है।

अबसे आठ-नौ वर्ष पूर्वकी बात है। प्रसिद्ध अंग्रेज शिकारी चैडविक मसूबिया जातिके लोगोंके अेक गाँवके समीप जाकर ठहरे। चैडविक महाशय अपने शिकारकी मुहीमपर थे। सायंकालको वे अपने तम्बूमें बैठे थे कि गाँवके समीपसे आतंक-जन्य कोलाहल सुनाअी पड़ा। तम्बूसे बाहर आये तो देखा कि गाँवकी स्त्रियाँ झीलके पनघटसे बिलखती, चिल्लाती और डरी हुअी गाँवकी ओर भागी आ रही हैं। अुनकी चिल्लाहट सुनकर गाँवके आदमी पनघटकी ओर बढ़े। चैडविक महाशय भी कौतूहलवश अुधर गये। जाकर देखा तो मालूम हुआ कि अेक नवयुवतीको अेक मगर पकड़ ले गया। घाटपर ज्यों ही वह जलपात्र भरने झुकी—अभी घड़ेने पानीको छुआ ही था—कि सामनेसे पानी फटा और मुँह फाड़कर अेक मगर अुसपर लपका। युवतीकी अेक चीख़ निकली, और 'फच्च' शब्दके साथ मगर अुसको लेकर गहरे पानीमें पैठ गया। अुसका घड़ा भी वहीं डूब गया, मानो अुस मानिनीके बिना वह अपना मुँह दिखाना लज्जास्पद समझता था।

वह युवती हालमें ही विवाह-सूत्रमें बँधकर मुतशिवी नामक व्यक्तिके यहाँ आयी थी। अभी अुसे अपने सुहाग जीवनका कुछ विशेष अनुभव नहीं हुआ था। पेड़का सहारा पाकर जिस प्रकार बल्लरी दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ती है, अुसी प्रकार अपने नवीन सहारे मुतशिवीको पाकर अुस युवतीके नवीन जीवनमें कोंपलें निकली थीं; पर मुतशिवीके घरकी वह जगमगाती ज्योति मनहूस मगरने बुझा दी! मुतशिवीको जब वह समाचार मिला कि मगर अुसकी प्रियतमाको ले गया, तब वह अेकदम विवेक-शून्य-सा हो गया, और दोनों हाथोंसे अपना सिर पकड़कर सिसक-सिसककर रोने लगा। अिस विपत्ति-वज्रपातकी अुसे स्वप्नमें भी आशंका न थी। अकस्मात् अुसकी जीवन-नौका डूब गअी। अिस समय वह अपने आपको मुर्देसे भी अधिक तुच्छ समझ रहा था। आखिर ध्येयहीन तथा सुखहीन जीवनसे क्या लाभ, अिसी मर्मस्पर्शी संकटकी चोटसे वह कुछ देर बेसुध-सा बैठा रहा, थोड़ी देर बाद अुसकी आकृति बदली। झुका हुआ सिर अूपरको अुठा। हाथोंको अुसने घुटनोंपर रखा। अुसकी आँखें अध-निकले आँसुओंको निगलने लगीं। मेघवर्ण ललाटके नीचे अंकित आँखोंमें बिजली चमकी, और खड़े होकर वह गरजा—"वह मगर मूर्ख है! अुसने मेरी स्त्री—नेमातुशा—को मारा है, और अब मैं-मुतशिवी—अुसे मारूँगा! वह कल मरेगा!"

मुतशिवीकी अैसी प्रतिज्ञा तो अुचित थी; पर चैकविक महाशयकी समझमें यह न आया कि वह अुसे पूरा कैसे करेगा,

अिसलिअे अुसने कहा—“देखो मुतशिवी, वह मगर—जैसा कि तुम कहते हो—अवश्य मरेगा; पर तुम अेक फन्दा लगाओ मैं अुसे तुम्हारे लिये मार दूँगा !”

मुतशिवी—“नहीं मालिक, यह नहीं हो सकता। फन्दा लगाअूँगा और मैं स्वयं ही अुसे मारूँगा। मगरने मेरी कुटियाका दीपक बुझा दिया है, अुसे ज्योतिहीन कर दिया है, अब मैं अपने हाथसे अुसका जीवन-प्रदीप बुझाअूँगा। या तो यह होकर रहेगा, या फिर मैं नमानुशाका अनुगामी हूँगा।”

मुतशिवीके दृढ़ निश्चयको सुनकर चैडविकके आश्चर्यकी सीमा न रही। अुन्होंने पूछा—“आखिर तुम बदला कैसे लोगे ? अुसकी योजना क्या है ?”

मुतशिवी—“सूर्योदय और सूर्यास्तके समय प्रतिदिन पानीके किनारे कुत्ता बाँधूँगा, और पास ही छिपकर बैठ जाअूँगा। अिस तरकीबको मैं तब तक काममें लाअूँगा, जब तक मगर अुसे पकड़ने न आवे। कुत्ते को पकड़कर मगर जैसे ही पानीमें जायगा, मैं भी अुसीके पीछे कूद पड़ूँगा और अपने ख़ंजरसे अुसे मार डालूँगा।”

चैडविकने मुतशिवीको बहुत-कुछ समझाया कि ख़ंजरकी अपेक्षा गोली कहीं अधिक कारगर है, गोलीसे मारनेमें अपनी जानका भी कोअी ख़तरा नहीं है। ख़ंजरकी चोट पड़ी-न-पड़ी, और फिर पानीमें मगरकी शक्तिका क्या ठिकाना ! यदि मगरको

तनिक भी चोट लग गअी, तो मुफ़्तमें अुसे कुत्तके साथ आदमीका मांस और मिलेगा। चैडविकने मगर मारनेके लिअे मुतशिवीको अपनी रायफलतक देनेका आग्रह किया, पर वह टस-से-मस न हुआ और अुत्तेजित होकर अुसने कहा—"यदि मैंने अुसके गोली मारी, और गोली खाकर कहीं वह डूब गया, तो मुझे यह कैसे माळूम होगा कि मैंने अुसे मार दिया? हाँ, यदि मेरे ख़ंजरपर अुसका खून लग जायगा, और यदि मैं अुसके पेटको सम्पूर्णतया चीर सकूँगा, तो मुझे ज्ञात हो जायगा कि मैंने अुसका वध कर डाला।"

मुतशिवीका ख़ंजर चौड़े फलवाला था। अुसकी धार अितनी पैनी थी कि अुससे मगरके पेटको फाड़ना कुछ कठिन बात न थी, पर मगरके पेटके नीचे पहुँचनेकी समस्या थी। चूहे यदि बिल्लीके गलेमें घंटी बाँध दें, तो धोखाधड़ीसे बिल्ली चूहों को नहीं पकड़ सकती। पर म्याअूँ का मुँह पकड़ना बड़ा कठिन है। अमुक बात होनेसे अमुक बात होगी।—अैसी कोरी बातें करनेसे कुछ नहीं होता। पानीमें मगरके पीछे कूद और अुसके पेटके नीचे पहुँचकर, अुसे फाड़ देना कुछ असम्भव-सा था। हाँ, अेक बात तो थी। मुँहमें कुत्ता पकड़े हुअे मगर अुसे तब तक नहीं काटेगा, जब तक कि ख़ंजर अुसके न भोंकी जाय। प्रशान्त महासागर-स्थित साअुथसी टापूके निवासी शार्कको तो अिसी प्रकार मारते हैं, पर मगर तो शार्क नहीं है, और न मुतशिवी वहाँका निवासी। बहुत-कुछ समझाये जानेपर भी मुतशिवी अपने निर्णयपर

अटल बना रहा। अुसके हृदयमें स्वयं बदला लेनेकी भावना और अुसके फलको निश्चित रूपसे जान लेनेकी प्रबल अिच्छा हिमालयके समान अचल और विशाल थी। वह अपने पथसे विचलित होनेवाला न था, अिसलिअे सायंकालको दर्शकके रूपमें चैडविक भी अुसके साथ छिपकर पानीके किनारे बैठ गये।

* * * * * *

अुस सायंकालको और अगले दिन प्रातःकाल तक कोअी विशेष बात न हुअी। जम्बजीकी सहायक क्वैंडो नदी द्वारा बनाअी गअी अुस झीलके किनारे मुतशिवी छिपा बैठा था। अुसके आगे, पानीके बिल्कुल समीप कुत्ता बँधा था। मुतशिवीकी आँखें अुन आँखोंकी खोजमें थी, जिनकी ज्योतिको वह बुझाना चाहता था। बगला और ढेंक किनारेपर आते थे। कुछ अपना चुगा खोजकर और कुछ पाकर अुड़ जाते थे। कुत्तेने वहाँसे छूटकर भाग जानेके लिअे अनेक प्रयत्न किये। खिंचकर, सिकुड़कर, अपने बंधनको दाँतसे काटकर और काँप-काँप करके वह थक गया; पर अुसके बूते वे बन्धन न खुले। दस-बारह मिनटके लिअे, कुत्ता चुप हो जाता और जीभ बाहर निकाले कातर-दृष्टिसे अिधर अुधर देखता, पर अुसे मुक्ति न मिलती। बलि पशुकी मुक्ति जीवनसे मुक्त होनेपर भले ही हो, फिर, वह तो नक्रदेव द्वारा बलि होनेके लिअे ही बाँधा गया था। मुतशिवीकी साध तो तभी पूरी होती, जब अुस झीलका आततायी अुस कुत्तेको लेकर जलमग्न हो जाता।

प्रतीक्षा और सहिष्णुताका फल प्रायः मिलता ही है। सायंकालको नरकलमें मुतशिवी जाकर बैठा ही था कि कुत्तेका भौं-भौं

भौंकना अेकदम कष्टपूर्ण काँय-काँयमें बदल गया। मगर कुत्तेको मुँहमें दबाकर गहरे पानीमें कूदा, अुसकी बड़ी, काली और भयानक पूँछसे पानीका वह भाग मथ-सा गया, और झीलमें झाग-ही-झाग दिखाअी देने लगे। मगरके साथ-ही-साथ बिजलीकी भाँति अेक दूसरा जीव भी पानीमें गिरा। वह मुतशिवी था। कितना विकट साहस! कितना दृढ़ संकल्प! अुसके प्रेम और बदलेकी भावनाको कोअी नाप सकता था! चैडविकको अुसके निर्णयपर कुछ सन्देह था। अुनका खयाल था कि आवेशमें आकर मुतशिवीने लम्बी-चौड़ी बातें बघार दी हैं। मगरकी विकराल आकृति देखकर वह सहम जायगा और पानीमें न कूदेगा। पर अुसके पानीमें कूद पड़नेपर चैडविकने चुपचाप अुससे अपनी भूलके लिअे मानसिक क्षमा-याचना की।

मुतशिवी मगरको मारनेके लिअे कूद पड़ा। प्रेमीके लिअे जान देना कुछ कठिन बात नहीं है, पर चैडविकके सम्मुख प्रश्न था कि मुतशिवी अपनी स्त्रीका अनुगामी बनेगा या अुसके शिकारीका शिकार करेगा? वह असी अुधेड़-बुनमें थे कि थोड़ी देरमें ही मगरकी थूथड़ी पानीके बाहर निकली। अुसके मुँहमें कुत्ता था। मगरने झीलके दूसरे किनारेकी ओर जानेकी कोशिश की, पर अुसकी यह गति तो ग्राह-स्वभावके विपरीत थी, क्योंकि मगर अपने शिकारको पकड़कर अुसको डुबानेकी खातिर नीचे पानीमें बैठ जाता है। अपने शिकारको लेकर पानीमें डूबकर तुरन्त ही किनारेकी ओर जलसे बाहर जानेका अर्थ था कि कोअी अवांछनीय वस्तु अुसके नैसर्गिक दुर्ग--गहरे पानी—में थी, जिससे विचलित होकर

खुश्कीकी ओर जानेकी चेष्टा कर रहा था। घरमें जब आग लगती है, तब बाहरको ही तो भागते हैं। कभी-कभी मनुष्यतकके लिअे अुसके जातिवाले वन-पशुओंसे भी अधिक क्रूर हो जाते हैं। अैसी दशामें मनुष्य अुनकी सूरततक देखना पसन्द नहीं करता। फिर वह तो मगर था। कुछ गड़बड़ हुअी होगी। मुतशिवीने अपने पैने खंजरको रक्तपान कराया होगा मगर चाहता तो वह मुतशिवीको अुसकी प्रियतमाके पास पहुँचाकर अुसीके स्थानपर दफ़ना सकता था; पर अुसके मुँहमें तो रसगुल्ला—कुत्ता—रखा था। अपने स्वादिष्ट भोजनको अुसने न छोड़ा। बहुत-से लोगोंको जानकी अपेक्षा जीविका अधिक प्यारी होती है। तिसपर मगरको, यह समझ थोड़े ही थी कि अुसकी जानका गाहक कोअी वहाँ गया था। कुत्ता और बकरा वह पकड़ा ही करता था। अेक दिन अेक स्त्री पकड़ ली, तो क्या हुआ?

कुत्तेको मुँहमें पकड़े ज्यों ही मगर पानीके धरातलपर आया और दूसरी ओर किनारेकी ओर चलने लगा, त्यों ही अेक गोलाकार काली-सी चीज़ पानीपर अुछली। वह मुतशिवी था। अेक निमेषके लिअे वह बाहर निकला और फिर डूब गया। अेक क्षण बीतनेपर फिर मगर अूपरको तड़पा और पानीके धरातलसे आधा अुठ गया, और अपने कठोर जबड़ोंसे कुत्तेको छोड़ दिया। मगरके आसपास चारों ओरका पानी रक्तवर्ण था, मानो खूनके नल खोल दिये हों। मगरकी बगलमें मुतशिवी भी दिखाअी पड़ा। मगरने ज्यों ही कुत्ते को छोड़ा, मुतशिवी अेकदम मुड़ा और किनारे पर बाहर आनेके

लिअे प्राणपणसे कोशिश करने लगा अब अुसे अपनी जान के लाले पड़े हुअे थे कि कहीं मगर अुसपर वार न कर बैठे, पर अुसके किनारे पर आनेसे पूर्व ही मगर विलीयमान हो चुका था।

* * * * * *

"मुतशिवी, क्या तुम मगरतक पहुँच सके थे?"—चैडविकने पूछा।

मुतशिवी—"मेरी खंजरकी धार देखो। मगरके मांसके छीछड़े अब तक अिसपर चिपटे हुअे हैं, और तनिक झीलके पानीपर दृष्टि डालो कि वह कितना लाल है!"

चैडविक—"तो क्या मगर मर जायगा?" आवेशमें आकर मुतशिवीने कहा—"वह तो मर चुका मालिक, कल अिसी समय हम लोग अुसकी खाल निकालेंगे।"

* * * * * *

अगले दिन सूर्यास्तसे दो घंटे पूर्व मगर अुलटा—पीठके बल—झीलमें तैर रहा था। मुतशिवीके खंजरने अुसकी स्त्री की जीवित कब्रको चीर डाला। डोंगियोंके सहारे मुर्दा मगर किनारेपर लाया गया। नापा तो पन्द्रह फुट लम्बा निकला, और अिस हिसाबसे आयुमें शायद सौ वर्षका होगा। पंद्रह फुटका मगर साधारण मगर नहीं होता, और छिपकलीके-से थूथनीवाले (Snubnosed) मगरके लिअे यह खासी अच्छी लम्बाअी है। अितने बडे और भयंकर मगरको गहरे पानीमें जाकर मारना साधारण बात नहीं है। और न

अिससे यह खयाल करना चाहिअे कि हर-अेक अिस प्रकार मगरको मार सकता है। या मनुष्य-भक्षक मगरका मारना अितना सरल है।

मगरका पेट फाड़ा गया। भीतरसे और चीजोंके साथ स्त्रीके गहने, अधगली टाँगें और केश निकले। अुनको पहचाननेवाला भी वहीं था। अुन्हें देखकर मुतशिवी फूट-फूटकर रोने लगा। विकृत तथा अधगले शरीरने मुतशिवीके सम्मुख अुसके सुखमय गार्हस्थ्य जीवनका चित्र खींच दिया। अुसके हृदयका ज्वालामुखी धधकने लगा, और अिस ज्वालामुखीके दो मुँहों (crater) से आँसू लावाके रूपमें निकलने लगे। हिचकियोंसे अुसका शरीर काँप रहा था और अश्रु-धारा बह रही थी।

* * * * * *

अुन आँसुओंसे अुसने अपनी स्त्रीको अश्रु-अंजलि दी, पर विरहका ज्वालामुखी अुसके हृदयमें जलता ही रहा, और वह अुसके जीवन-भर जाग्रत रहेगा। अुसे केवल अेक संतोष और अभिमान है कि अुसने अपनी प्यारीके खूनका ‘बदला’ खूनसे लिया। वह बदला था या नहीं—यह कहना कठिन है। पर मुतशिवीको अुस बदलेसे कुछ सान्त्वना जरूर मिली, और अुसका स्नेह अपनी मृत पत्नीके प्रति और भी गाढ़ा हो गया।

---

१०. भदन्त आनंद कौसल्यायन

भदन्तजी बौद्ध दार्शनिक हैं—अैसे बौद्ध, जिन्होंने जीवन-संग्राममसे बिलकुल ही मुँह नहीं मोड़ लिया—और अैसे दार्शनिक, जिन्हें चिंतनने जन-जीवनके परिहाससे बिलकुल ही परे नहीं कर दिया।

वह जीवनका निरीक्षण करते चलते हैं, जैसे छिपकर, अपनेको निर्लिप्त रखते हुअे। जीवनके तनेको पकड़कर हिलानेका—अुसकी आँतोंमें हाथ डालकर नश्तर लगानेका—प्रयत्न अुन्होंने नहीं किया। लेकिन अैसा नहीं है कि अैसे सत्प्रयत्नोंसे वह अपरिचित हों अथवा अुन प्रयत्नोंके प्रति अुनका दृष्टिकोण अस्पष्ट हो। प्रतिक्रियाकी, पूँजीवादकी, ढोंग-ढकोसलोंकी और सामाजिक और व्यक्तिगत पाखंडकी शक्तियोंपर अुन्होंने कस-कसकर चोटें की हैं।

विचारक और विद्वान् होनेके अतिरिक्त भदन्त आनंदजी हिंदीके अेक अुच्च कोटिके शैलीकार हैं। कम-से-कम शब्दोंमें अधिक-से-अधिक बातको ज्यादा-से-ज्यादा प्रभावशाली ढंगसे कहनेकी कला हमें अुनसे सीखनी चाहिये।

रचनाअें:—गद्य—जातक कथा (चार भाग), तथागत, 'जो लिखना पड़ा'; 'जो न भूल सका' 'कहाँ क्या देखा?'।

केवल तीन खत

विद्यार्थी जीवनमें मुझे अिस बातका अभिमान था कि मैं न कभी कोअी अुपन्यास पढ़ता हूँ न नाटक। अच्छे लड़कोंको अुपन्यास, नाटक पढ़ना न चाहिये। अेक मित्रने बड़ी कोशिशसे मेरे गलेसे यह बात अुतारी कि सभी नाटक सभी अुपन्यास खराब नहीं होते। अुन्होंने कहा कि तुम प्रेमाश्रम और सेवासदन पढ़कर देखो तो तुम्हारी सम्मति बदल जायगी। मैंने अुन्हें पढ़ना शुरू किया, मुझे अच्छे लगे। लेकिन चूँकि मैं अितनी जल्दी हारने, कमसे कम हार माननेके लिये तैयार न था, मैंने बिना समाप्त किये ही अुन्हें रख दिया।

अब मैं अिस बातपर अभिमान करने लगा कि मैं 'प्रेमाश्रम' और 'सेवा-सदन' जैसे अुपन्यासोंको बिना समाप्त किये छोड़ सका। पर जिसे मैं अपनी जीत घोषित करता था वह थी मेरी हार। 'प्रेमाश्रम' और 'सेवा-सदन' का जादू मुझपर असर कर गया था।

कुछ ही दिन बीतने पाये थे, न जाने कब आर कैसे मैंने मनको समझा लिया। अेक दिन मेरे हाथ चुपकेसे फिर 'प्रेमाश्रम' और 'सेवा-सदन' अुठा लाये और मुझको होश तब आया जब

मैंने दोनोंको समाप्त कर दिया। 'कर्मभूमि', 'कर्बला', 'वरदान'—अब जो मिलता वह पढ़ता और कहा करता कि जो बातें धर्म-ग्रंथों में नहीं हैं, वह प्रेमचन्दके अुपन्यासोंमें हैं; धर्म-ग्रन्थ अुपदेश देकर तबियत को चिढ़ाते हैं, प्रेमचन्द अुपदेश न देकर अुपदेश दे जाते हैं।

किसी समय अुपन्यास-नाटकोंसे नाक-भौं सिकोड़नेवाला विद्यार्थी अब प्रेमचन्दकी भाषा और अुनके भावोंकी प्रशंसा करते न अघाता था। वह अुनके किसी भी ग्रन्थको लेकर बैठता, कागज-कलम अुसके हाथ में रहती—न जाने कहाँ कौन अनमोल रत्न मिल जाय? रत्नोंकी अुन चुस्त वाक्यावलियों में क्या कमी थी?

× × ×

सन् १९२८ से ३५ तक के साल मेरे जीवनके जलावतनीके साल रहे हैं। अिधर सिंहल, बर्मा, स्याम और यूरोपके अेक-दो देशोंमें अैसा भटकता रहा कि कभी कभी किसी मासिक पत्रमें प्रेमचन्दजीकी कोअी रचना पढ़ लेनेके अतिरिक्त सिलसिलेसे कुछ न पढ़ सका। सन् १९३५ में जब कुछ स्थिरताके साथ सारनाथमें रहने लगा तब सुना कि हमारे 'महाबोधि विद्यालय' में अेक विद्यार्थी है, जो प्रेमचन्दजीका सम्बन्धी है और जो अुनका पत्र लेकर विद्यालयमें भर्ती होने आया था। प्रेमचन्दजीका कोअी अपना हमारे विद्यालयमें पढ़ता है, सुन बड़ी प्रसन्नता हुअी। मैंने चि. कृष्णचन्द्रको बुलवा भेजा और अुससे पता लगा कि सारनाथसे कुल डेढ़-दो कोसकी दूरी पर लमहीमें प्रेमचन्दजी रहते हैं। और आजकल घर-

पर ही हैं। मैंने धर्मदूत* के दो-तीन अङ्कोंके साथ चि॰ कृष्णचन्द्रके हाथ पत्र भेजा। अगले दिन अुत्तर मिला:—

२५-८-३५

"प्रिय कौसल्यायनजी वन्दे !

तीनों अङ्क मिले। अनेक धन्यवाद। मैं दिनभर घरपर रहता हूँ। अिस मासके अंततक बाहर जानेवाला हूँ। मकान ले रखा है। आप आनेका कष्ट करें तो बड़ी कृपा हो।

भवदीय,

प्रेमचंद।"

पत्र पाकर हृदयमें बड़ी गुदगुदी अुठी। अितनी आसानीसे अितने बड़े कलाकारके दर्शन करनेको मिलेंगे। वह कैसे होंगे? किसीके लेखमें पढ़ा था कि खद्दरका कुर्त्ता पहिने दिनभर कागजपर कलम दौड़ाया करते हैं। अुनका अमूल्य समय मैं लूँगा, क्यों लूँगा? तो न जाअूँ? लेकिन बिना जाये कैसे रह सकूँगा? यदि आज अिस अिच्छा को दबा लिया, तो यह कल फिर तंग करेगी। अैसी हालतमें अच्छा है कि आज अिसे पूरा कर ही लिया जाय। लेकिन कुछ-न-कुछ बात जो करनी होगी। अिच्छा तो केवल यह थी कि अेक-आध घंटा मुझे चुपचाप अुनके पास बैठे रहने-भरकी छुट्टी मिल जाय; लेकिन चुपचाप कौन किसे बैठने देता है—अिस सभ्यताके युगमें?

सोचा, तो प्रश्न ले चलूँ। लेकिन प्रश्न करने के लिये भी

---

* सारनाथसे 'धर्मदूत' नामक अेक छोटा-सा पत्र निकलता है।

तो अक्ल चाहिये, ज्ञान चाहिये, और अिजानिब हैं 'साहित्य-संगीत-कला विहीनः।' अिस तरहके नाना विचार अुठते रहे और स्कूलकी छुट्टी हो गअी। चि. कृष्णचन्द्रने पूछा—'चलेंगे?' मैंने कहा 'हाँ' और साथ हो लिया।

× × ×

खेतोंकी मेड़ोंपर बड़ी सावधानीसे चलते हुअे, कहीं-कहीं बरसाती पानीके छोटे-छोटे गढ़ोंको फाँदते-लाँघते, मग़रिबमें डूबते सुनहरी सूर्यकी किरणोंका आनन्द लूटते अुस समय घर पहुँचा जब सूर्य अस्त हो रहा था, हो चुका था। कृष्णचन्द्रने जाकर खबर दी। अन्दरसे कुण्डी खटकी और सामनेकी बैठकका दरवाजा अैसे खुला जैसे कोअी परदा हटा हो। अुसके पीछे अेक हँसती हुअी मूर्तिने अैसे, अपनेपनसे, मेरा स्वागत किया कि मुझे अपनी बेवकूफी-पर हँसी आने लगी। अैसी घरेलू तबियतके आदमीसे मिलनेके लिये अितनी अुधेड़-बुन? अुन्होंने बात छेड़ी—शायद राहुलजी का हाल पूछा, मैंने अुत्तर दिया। सिंहल-साहित्यकी बात और फिर तो प्याजके छिल्कोंकी तरह अेक बातमें से दूसरी बात अैसे निकलती गअी कि कितना ही समय व्यतीत हो गया और पता ही नहीं लगा। अेक बार 'अीश्वर' की चर्चा भी चली। अुन्होंने कहा 'जो अीश्वरको नहीं मानते हैं, वह भी किसी स्वजनके मरनेपर रोते हैं, जो मानते हैं अुनसे भी बिना रोये नहीं रहा जाता। अैसी हालतमें 'अीश्वर' के माननेका फायदा?' मुझे पता लगा कि हमारा कलाकार निरंतर बिकसित हो रहा है। अुस दिन लौटते

समय अँधेरे और बरसातके कारण रास्तेमें कुछ कष्ट हुआ, काफी कष्ट हुआ, लेकिन अुससे तो तीर्थ-यात्राका पुण्य ही बढ़ा !

× × ×

सिंहल-प्रवासके कारण मुझे वहाँकी भाषा और साहित्यका कुछ अूपरी ज्ञान हो गया है। जिस समय भारतीय साहित्य परिषदके मुख-पत्रके रूपमें 'हंस' निकलना आरम्भ हुआ, मुझे ख़्याल आया कि 'सिंहल' साहित्यका भी अुसमें कुछ स्थान रहना चाहिये। अेकाध सिंहल कविताओंके अनुवाद 'हंस' में छपे। अेक दिन मैंने श्री नन्ददुलारे बाजपेयीका अेक विचारपूर्ण लेख पढ़ा, जिसका शीर्षक था 'बुद्धिवाद'। मुझे अच्छा लगा। अुसमें बुद्ध-विचारके बारेमें कुछ विचार थे। अुनके सम्बन्धमें अेक छोटा-सा नोट लिखकर अुस चर्चाको आगे बढ़ानेका अपना लोभ संवरण न कर सका। 'बुद्धका बुद्धिवाद' शीर्षकसे मैंने काँपते हाथों कुछ पंक्तियाँ लिखीं—किसीके विचारोंकी आलोचना करना और अुसको भर-सक कटु न होने देना कठिन अभ्यास-साध्य कार्य है। और अुन्हें सम्पादक 'हंस' के पास भेज दिया। मैं अुन दिनों सिंहलमें था। लौटती डाकसे प्रेमचन्दजीने अुत्साह बढ़ाया।

१४-२-३६

"प्रिय आनन्दजी !

आपका नोट मिला। धन्यवाद ! अिसकी जरूरत थी। छापूँगा। हाँ, सिंहल-साहित्यके विषयमें अगर कोअी लेख भेज सकें तो बड़ा अच्छा हो। अैसे तो हम कुछ जानते ही नहीं। अुसका

कुछ आलोचनात्मक अितिहास हो तो कोअी हर्ज नहीं। अिंग्लैंड जाअें तो वहाँसे 'बौद्ध-साहित्य' पर अेक अच्छा-सा लेख लिखें, केवल अुसके धर्म-साहित्यपर नहीं बल्कि बौद्धकालीन-साहित्यपर। अैसे लेखकी बड़ी ज़रूरत है। आशा है आप प्रसन्न हैं।

आपका,

प्रेमचन्द।"

मैंने हिन्दी पत्रोंमें अधिक लेख नहीं लिखे; अिसलिअे अपने सम्पादक-प्रवरोंसे कोअी विशेष पत्र-व्यवहार भी नहीं रहा। लेकिन जिन-जिन सम्पादकोंने कभी-कभी कुछ लिखकर मुझे अुत्साहित किया है अुनमें कभी किसीने अितनी नपी-तुली अुत्साह-वर्धक पंक्ति नहीं लिखी—"आपका नोट मिला। धन्यवाद। अिसकी ज़रूरत थी। छापूँगा।"

× × ×

दूसरी बार अिंग्लैंड जानेका विचार छोड़कर मैं सिंहलसे वापिस सारनाथ चला आया। अेक दिन मुझे भारतीय-साहित्य-परिषदके मन्त्रीकी चिट्ठी मिली, जिसका मतलब था कि यदि कोअी आपत्ति न हो तो वह मुझे भा० सा० परिषदका सभासद बना लेना चाहते हैं। हिन्दी भाषा-भाषियोंमें सिंहल-साहित्यसे कुछ परिचय रखनेवाला—यही अपने रामकी विशेषता समझी गअी होगी। मैंने धन्यवादपूर्वक प्रतिज्ञा-पत्र भरकर लौटा दिया। किसी भी संस्थाका सभासद बनते समय अेक भिक्षुके लिअे जो बात विचार लेनेकी होती है, वह चन्देकी है। सो अिसमें न था। भारतीय-साहित्य-परिषदके

अुद्देश्योंसे मेरी सहानुभूति थी और है, तथा मैं श्रद्धापूर्वक कुछ सेवा करना चाहता था, और चाहता हूँ। सभासद बननेके बाद मेरे पास भारतीय-साहित्य परिषदके मन्त्रीके हस्ताक्षरसे कभी-कभी पत्र आने आरम्भ हुअे—लेकिन सभी अंग्रेज़ीमें। सम्भव है कभी कोअी हिन्दीमें आया हो, लेकिन दिमागपर ज़ोर डालनेपर भी तो याद नहीं आ रहा है। मैं स्वयं अंग्रेजीमें पत्र लिखता हूँ; कभी-कभी भारतमें भी और वैसे भारतके बाहर। जो दो-चार भाषाअें जानता हूँ; अुन सबमें समय-समयपर पत्र लिखते रहना चाहता हूँ—कम-से-कम अिसी ख़्यालसे कि अभ्यास बना रहे। लेकिन भारतीय-साहित्य-परिषदके मन्त्री तो बिल्कुल दूसरी चीज़ हैं। वह अपने व्यक्तिगत पत्र चाहे जिस भाषामें लिखें लेकिन भारतीय-साहित्य-परिषदके मन्त्रीके पत्र तो अुन्हें हिन्दीमें और केवल, हिन्दीमें, लिखने व लिखवाने चाहिये। हिन्दीमें न लिखकर यदि किसी अन्य भारतीय भाषामें लिखें तो भी मुझे आपत्ति नहीं, लेकिन भारतीय-साहित्य-परिषदका मन्त्री और पत्र लिखे अेक अभारतीय भाषामें और अैसी अभारतीय भाषामें जिसकी मानसिक गुलामीसे देशको मुक्त करना हमारी राष्ट्रीय समस्या है! कुछ अिसी प्रकारके विचारोंसे क्षुब्ध होकर मैंने प्रेमचन्दजीको अेक पत्र लिखा। अुत्तर मिला:—

"प्रिय आनन्दजी!

क्या आप समझते हैं अंग्रेजोंकी गुलामीसे भारतीय-साहित्य-परिषद मुक्त है? जब कांग्रेसकी सारी लिखा-पढ़ी, अंग्रेजीमें होती है, तो भारतीय-साहित्य-परिषद तो अुसीका बच्चा है। मन्त्रीजी

हिन्दी नहीं जानते, मगर हिन्दीके भक्त अवश्य हैं। अगर आप अैसे भक्तोंको दबायेंगे तो वह भाग खड़े होंगे।

'हंस' सितम्बरसे 'सस्ता-साहित्य देहली'से प्रकाशित होगा। मैंने अुसके सम्पादनसे अिस्तीफा दे दिया है। मैं अिधर अेक महीनेसे बीमार हूँ।

अगर अच्छा हो गया तो यहाँसे अपना अेक नया पत्र 'प्रागतिक लेखक संघ'की विचार धाराके अनुसार निकालूँगा।

मुझे आशा है, अिस नअी योजनामें मैं आपकी मददपर भरोसा कर सकूँगा।

—प्रेमचन्द।"

अिस पत्रको अुध्दृत कर चुकनेपर मनमें अितने भाव अुठ रहे हैं कि आगे कुछ लिखा नहीं जाता। अुस दिन बीमारीकी अवस्था में मैं, कविवर मैथिलीशरणजीके साथ, जो अुनके दर्शनकर आया, बस वही अंतिम-दर्शन रहे। 'अगर अच्छे हो जाते'—तो अुनकी अंतके दिनोंकी अिच्छा थी 'अेक नयापत्र प्रागतिक लेखक संघकी विचारधाराके अनुसार निकालनेकी।' मुझे यह देखकर संतोष और हर्ष हो रहा है कि माता शिवरानी देवी 'हंस'को चलाअे जा रही हैं। अुसका यद्यपि नाम पुराना ही है, लेकिन है वह प्रेमचन्दजीका 'नया पत्र'।

मुझसे अुसकी जो 'मदद' बन सकेगी, वह मेरा सौभाग्य होगा।

---

११. शौकत थानवी

आजकलके हास्यरस-लेखकोंमें शौकत थानवी ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। वैसे आपकी गजलोंका अेक संग्रह 'गहरीस्तान' नामसे प्रकाशित हुआ है मगर आपकी कीर्ति विशेषकर परिहास और हास्यरसके कारण ही हुअी है। आपका लेख दैनंदिन जीवन और अुसकी साधारण बातोंपर अेक सुंदर टिप्पणी होती है। आपने मौलवी मुहम्मद अिस्माअिलकी रीडरोंसे कविताओंकी पहली पंक्तियाँ लेकर अुनपर अच्छी कहानियाँ लिखी हैं, जैसे 'सुनाअूँ तुम्हें बात अिक रातकी' या 'लाड़ला बेटा था अिक माँ-बापका' आदि। आजकल आप लखनअूसे 'सरपंच' नामकी अेक साप्ताहिक पत्रिका निकालते हैं।

रचना—गद्य—हँसती-बोलती तस्वीरें।

': अुर्दूके अदीब : श्रीपाद जोशी' से।

मेहमान

अनेक आफ़तोंमेंसे एक आफ़त मेहमान भी है; जो हम हिन्दुस्तानियोंपर अक्सर दैवी प्रकोपकी भाँति नाज़िल हुआ करती है। हमारा मतलब यह नहीं है कि हमें मेहमान बुरे लगते हैं या हम मेहमानोंसे बरी होना चाहते हैं। हाँ, अितना अवश्य है कि हम भारतीय प्रथाओंके सुधारके लिअे अीश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि भगवान अिन भारतवासियोंको मेहमान बनाना सिखा दे। और यदि अिनको मेहमान बनना नहीं आता, मेज़बानोंके दिलमें अितनी शक्ति दे कि वह मेहमानोंकी आदत खराब करनेकी कुचेष्टा न कर सकें।

अिस तहज़ीबपर ध्यान दीजिये :—आधी रातका समय है। संसार निद्रा देवीकी गोदमें शान्तिपूर्वक सो रहा है। यह मेहमान महोदय किसीको सूचना दिये बिना ही, दैवी प्रकोप या भूचालकी भाँति आ धमके और दरवाजा खुलवानेके लिअे अैसी आवाज दी कि—अड़ोसी-पड़ोसी क्या, सारे मुहल्ले भरको जगा दिया। वह बेचारा अपनी आँखें मलता हुआ घरके दरवाजेपर आता है कि देखें क्या बला है? सो यह मेहमान महोदय अेक बिस्तरे और अेक ट्रंक के साथ नमस्ते करते हुअे दिखाअी देते हैं। सच बताअिये, अैसे अवसरपर अुस बेचारेकी क्या दशा होगी, जिसके घरमें न तो

अिस मेहमानको ठहरानेके लिअे जगह है और न सुलानेके लिअे चारपाअी। किन्तु वह अपने हार्दिक भावोंको छिपाकर अतिथि-सत्कारके भावसे तनिक मधुर हास्यसे कहता है—

"ओह ! आज रास्ता भूलकर कहाँ आ गये ?" मेहमान महोदय भी शिष्टाचारको प्रकट करते हुअे कहते हैं—"अरे भाअी, तुम क्यों आने लगे ! मैं ही निर्लज्ज हूँ, जो आ गया। झाँसी जा रहा था, दिल न माना कि आगरेसे गुजरूँ और तुमसे न मिलूँ। कहो अच्छे तो हो ! भाभीजी कैसे हैं ? मेरा नमस्ते तो कह दो। बच्चे कैसे हैं ? अुन्हें देखनेके लिअे दिल छटपटाता था।"

"अच्छा भाअी ! अिस तांगेवालेको क्या दे दूँ ?" मेजवान फौरन तांगेवालेको किराया देगा। मेहमान महाशय भी जरा यों ही तांगेवालेको किराया देनेका आग्रह करेंगे। किन्तु गृहस्वामी, "भला यह कैसे हो सकता है ?" कहकर अुसे किराया दे देंगे। अब अुसे प्रथम मेहमानके लिअे चारपाअी और सोनेके लिअे स्थानके प्रबन्धकी जरूरत पड़ेगी और वह किसी बच्चेको अुठाकर चारपाअीपर लिटाअेगा, किसीको अुसकी माताके पास। स्वयं, अपना बिछौना जमीनपर लाकर मेहमानके लिअे सबसे अच्छी खाटका, जो अुसके घरपर होगी, प्रबन्ध करेगा। अुसे मेहमानके भोजन तथा जलपानका ध्यान आवेगा। अब अेक बजेके समयको देखिअे और मेहमानके भोजनपर ध्यान दीजिये, किन्तु वह प्रबन्ध करेगा। और मेहमान साहबको देखिये कि वह भी अिसी समय भोजन करेंगे। भोजनादिसे निवृत्त होकर मेहमान महोदय तो अपनी शय्यापर

विराम करेंगे, किन्तु गृहस्वामी अब भी अुनके निकट बैठकर अिधर-अुधर की बातें करेगा। कभी पानको पूछेगा, कभी हुक्केको और कभी यह भी पूछेगा कि "कोअी कष्ट तो नहीं है? यह आपका अपना ही घर है। संकोच की कोअी बात नहीं है।"

हम सच कहते हैं कि जो व्यवहार अुक्त मेहमान महाशयनें अिस दीन हिन्दुस्तानी गृहस्वामीके साथ किया है, यदि किसी अंग्रेजके साथ करते तो मजा आ जाता। प्रथम तो रात्रिके समय स्टेशनसे किसी अंग्रेजके घरपर जानेकी धृष्टता ही नहीं की जाती और यदि मस्तिष्कके दोषके कारण अैसी कुचेष्टा कोअी मेहमान कर भी बैठे, तो अिस बुरी तरहसे बंगलेसे निकाला जाय कि सम्भव है, फिर अुम्रभर मेहमान बननेका नाम न ले। अंग्रेजोंपर यह मेहमानवाला दैवी प्रकोप प्रथम तो होता ही नहीं; यदि होता भी है, तो अनिश्चित रूपसे कभी नहीं होता। अंग्रेज अपने किसी मित्रके यहाँ किसी विशेष आवश्यकता या घटनाके बिना नहीं ठहरते। वह होटलमें विश्राम करना अधिक पसंद करते हैं। यदि किसी अंग्रेज़को किसी मित्रके यहाँ ठहरना होता भी है, तो वह सबसे प्रथम सूचना देकर। स्वीकृति दे दी तो ठीक, नहीं तो सीधा होटल; यदि होटल न हो तो डाकबँगलेकी राह पकड़ता है। अंग्रेज मेहमान अैसे असभ्य नहीं होते कि मेजवानके सिरपर भूतकी भाँति सवार हो जायँ। और न मेजवान ही अैसी अनुचित सभ्यताके पुजारी होते हैं कि स्वयं दुःख भुगतें और व्यर्थकी बला सिर लें।

यह बात तो भारतीय मेहमानोंमें ही दीख पड़ती है कि आजादीके साथ हर अेकके घरपर अपने सामानके साथ पहुँच जायेंगे। जिससे अेक बार परिचय प्राप्त हो गया, फिर अुसको अितना कष्ट देंगे कि बेचारेको संसारके समस्त पापोंसे जीवनभरके लिअे मुक्ति मिल जावेगी। जिस समयसे पधारेंगे और जब तक वापिस न जायेंगे, गृहस्वामीकी यह दशा रहेगी कि अुन्हें आराम पहुँचानेके लिअे, अपने शरीर तककी भी सुध न लेगा। अुसके घरके सब आदमी बाल, वृद्ध, स्त्री और पुरुष—अेक व्यक्तिके लिअे व्यग्र और संलग्न रहेंगे। जैसे मेहमानने आकर अुनके घर दफ्तर खोल दिया हो। कोअी पान लगा रहा है, कोअी हुक्का ताजा करनेमें लगा हुआ है और समयपर भोजन तैयार करनेके लिअे अेक पूरा स्टाफ़ भोजनालयमें कार्य कर रहा है। और स्वयं गृहपति महोदय हैं; जो रह-रहकर बाहरसे आकर समस्त कार्योंका निरीक्षण कर जाते हैं। यदि कोअी मुसलमान साहब हैं तो क्रोधित होकर कहते हैं, "लाहौल विला कूवत! अभी तक मुर्ग भी साफ़ नहीं किया गया। वह मग़रीबके बाद भोजन करते हैं और हमारे यहाँ अभी तक चावल तक नहीं चढ़े। खुदाके वास्ते तुम लोग मेरी नाक न काटना। क्या कुछ बाजारसे मँगाना पड़ेगा?" अिसके अुत्तरमें कुछ काम करनेवाले तो मौन धारण कर लेंगे, कुछके होठों पर बड़बड़ाहटके चिन्ह प्रगट होंगे। किन्तु गृहलक्ष्मी अिस प्रकारकी बातोंका अुत्तर कब तक न देगी। फौरन किसी बर्तनको आवेशमें आकर पटककर कहेगी— "वाह! हाथ-पैर फुलाअे देते हैं। कोअी चार हाथ-पैर कैसे लगाअे? हथेलियोंपर सरसों जमाअे देते हैं। किस वक्त सौदा आया है। या

सौदा लेने भी मैं ही चली जाती। अभी कअी बाँस सूरज है और आप अैसी तोबा-तिल्ला मचा रहे हैं, मानो चार दिनके फाक़ोंसे हों।"

अब यदि गृहपतिने गृहिणीको अुत्तर दिया, तो यही सिलसिला यह रूप धारण कर सकता है कि बाजारसे भोजन आ जाय और अतिथिसे कह दिया जाय, घरमें अिस प्रकार दौरा पड़ा कि घर भर परेशान है। और यदि गृहिणीकी बातको गृहस्वामीने पीकर अपनी बुद्धिमत्ताका परिचय दिया, तो थोड़ी देरके पश्चात् भोजन बन ही जाता है।

संक्षिप्तमें यह है कि अेक मेहमानके आ जानेसे समस्त परिवारकी व्यवस्था अैसी बदल जाती है, जैसे कयामत बरपा हो गअी। और मेहमानकी यह हालत कि अुसके कानपर जूँ तक नहीं रेंगती। अधिकसे अधिक यह है कि भोजनकी व्यवस्थाको देखकर, तनिक मन चाहा तो शिष्टाचारके तौरपर कह दिया—भोजन-व्यवस्थामें अितने कष्टकी क्या आवश्यकता थी। किन्तु यदि मेजबान बेचारा यह ढोंग न रचे, तो यही मेहमान साहब अुससे अितने रुष्ट हो जावेंगे कि दूसरेके यहाँ जाकर अुसका मजाक़ अुड़ायेंगे, अुसकी खूब आलोचना करेंगे और अिस अतिथि-सत्कारके दोषको कुरेद-कुरेदकर प्रत्येक स्थानपर अुसे बदनाम करेंगे।

मेहमान भी मुख्तलिफ मिजाज तथा विभिन्न श्रेणीके होते हैं। प्रथम वह हैं जो अपनी साहब-बहादुरीके कारण मेजबानके कष्टोंका कारण होते हैं। सुबह होते ही चायके प्रबन्धके अतिरिक्त अुनके लिअे नाअीका अिन्तजाम करना पड़ता है। स्नानका प्रबन्ध करना

और जिस प्रकार भी हो, अुनके लिअे कमोड़का प्रबन्ध भी किया जाय। नहीं तो सब सेवा-सत्कार धूलमें मिल जावेगा। दूसरी श्रेणीके वह हैं, जो अपने गँवारपनसे मेजवानके नाकमें दम कर देते हैं। अुनके लिअे टेबिलपर भोजन लगाया गया, तो हाथ धोकर कुर्सी लगानेसे पहले ही, गृहस्वामीकी प्रतीक्षा किअे बिना ही, मेजपर ही बैठकर, भोजन करने लगते हैं। अब न तो अुनको मेजपरसे हटाते बन पड़ता है और न अुनके साथ मेजपर चढ़कर भोजन करनेको दिल चाहता है। शौचादिके लिअे अुनको स्नानागारमें भेजा, तो कमोड़का चारों ओरसे परीक्षण करके आ जायेंगे कि वहाँ तो कोअी स्थान अैसा नहीं है, जहाँ शौचादिके लिअे स्थान हो। अुनके शयनका प्रबन्ध किया जाय तो पलंगके चारों ओर हजारों पीकदान और थूकदान रख दिअे। किन्तु प्रातः अुठकर देखिअे, तो भगवान् झूठ न बुलावे, कमरेका तमाम फर्श व दीवार पानकी पीककी पिचकारियोंसे रंगी हुअी मिलेगी।

अिनको अपने कमरेका चार्ज देकर दफ्तर चले जाअिये तो सन्ध्याको कमरा अिस प्रकार खुला मिलेगा कि गद्देपर कुर्सियोंके बीचमें हुक्का औंधा पड़ा होगा, चिलम टुकड़ोंके रूपमें दिखाअी देगी। कालीन राख और हुक्केके जलसे पवित्र किया हुआ मिलेगा और मेहमान महोदय लापता होंगे। अब अिनकी प्रतीक्षा हो रही है, दासी आकर भोजनके लिअे आग्रह कर रही है, किन्तु भोजन कैसे किया जाय? अतिथि महाशय तो गायब हैं! गृहस्वामी बेचारा झूठे शिष्टाचारके ढोंगसे दुखित, क्षुधाके कारण पेटपर हाथ

रक्खे अुनकी बाटमें बैठा रहेगा। वह रात्रिको किसी समय जब जी चाहेगा आ पधारेंगे, और अुनको अिस प्रकार देर करनेपर तनिक भी पश्चात्ताप न होगा, बल्कि अुल्टा यह दोष देंगे कि स्वयं मेजवान अिस अवारागरदीमें अुनके साथ क्यों नहीं था।

अेक तीसरी श्रेणी अुन अतिथियोंकी है, जो अधिकतर मेजवानके यहाँ स्थाअी रूपसे आ विराजते हैं। अुन्हें कअी कअी मास व्यतीत हो जाते हैं। परन्तु जानेका नाम नहीं लेते। मेहमान थोड़े दिन अभ्यर्थना करनेके पश्चात् अुनके साथ वह बर्ताव आरम्भ कर देता है, जो प्रतिदिन आनेवालेके साथ होता है अर्थात् न तो अुनके भोजनकी प्रतीक्षा की जाती है और न कोअी विशेषता अुनके लिअे होती है, और न अुनसे दिनभरमें पचास हजार बार यह पूछा जाता है कि आपको कोअी कष्ट तो नहीं है? किन्तु अिस अुदासीनताके होते हुअे भी मेजबानके घरको हर प्रकारसे अपना घर समझकर रहते हैं। वह अपने विचारों द्वारा अपने हृदयमें यह धारणा बना लेते हैं कि मेरे कारण गृहपतिको कोअी कष्ट नहीं है। किन्तु अिसी तीसरी श्रेणीमें कुछ महानुभाव अैसे भी होते हैं, जो अेक अवधि तक अतिथि रहकर अपनेको अुस कुटुम्बका सदस्य समझने लगते हैं। मेजबानकी दास-दासियों, बच्चे तथा धर्मपत्नीपर अिस प्रकारका शासन आरम्भ कर देते हैं, जैसे सब कुछ अुन्हींका है। भोजनमें देर हुअी, तो तकाजा कर दिया। शाकमें नमक तेज है, अप्रसन्नता प्रगट कर दी; कोअी अैसी वस्तु बन गअी, जो आपको रुचिकर न हो तो अुसके लिअे आगेसे न बननेका आर्डर दे दिया।

यानी वह अिस प्रकार रहना आरम्भ कर देते हैं, जैसे अुनके बाप-दादोंका घर हो और वह अिसी घरमें पैदा हुअे हों।

हमें तो अैसे मेहमान अच्छे लगते हैं, जो सूचना देनेके पश्चात् हमारे घरपर आवें। हम मोटर या ताँगा लेकर अुनको लेनेके लिअे स्टेशनपर जायँ। अुनका हृदय खोलकर स्वागत करें। अेक दिन अुनके आगमनके अुपलक्षमें 'डिनर' दें, जिसमें हमारे भी मित्र सम्मिलित हों और वह मित्र भी अिसी प्रकार हम सबको भोज दें। जबतक ठहरें प्रीत-भोजका ताँता लगा रहे। अिसके पश्चात् वह विदा हो जावें और बिदाअीके समय हमारे बच्चोंको रुपये दें। हमारे नौकरोंको अिनाम दें और हमें भी अपने यहाँ आनेका निमन्त्रण देकर चले जावें। खैर, अिन बातोंसे तो लोग हमें न जाने क्या समझेंगे। यह तो मजाक था। परन्तु हमको अैसे मित्र अच्छे लगते हैं, जो मेहमान बनें और मेहमान अैसे अच्छे लगते हैं जो होटलमें ठहरनेके पश्चात् हमसे मिलने आ जाया करें, या अधिक-से-अधिक हमारी स्वीकृतिके बाद, यानी हमें सूचित करके अेक-आध दिन हमारे घर ठहर जायँ। अुनका जीवन भी अैसा ही हो, जैसा जीवन हम व्यतीत करते हैं। जैसे, यदि हम अुक्त शौचादिके लिअे कमोड्का प्रयोग करते हैं तो वह भी करें। यदि हम अुक्त कार्यके लिअे मैदानमें जाते हैं, तो वह भी आनाकानी न करें; यदि हम सन्ध्या समय भोजन करते हैं, तो वह भी हमारे समयका ध्यान रक्खें। और यदि हम रात्रिके दो बजे भोजन करते हैं, तो वह भी हमारे लिअे अिस कष्टके झेलनेका प्रयत्न करें। मतलब यह है कि

अुनके आ जानेसे हमें अपने घरके आकाशको पृथ्वी और पृथ्वीको आकाश न करना पड़े।

हमारे बहुतसे शुभचिन्तक अैसे भी हैं, जिनको अतिथि बनना आता है, यानी वह हमारे 'हम-खयाल' मेहमान बनकर आते हैं और हमें अुनका अतिथि होकर आना अनुचित या बुरा मालूम नहीं होता। हम अुनके लिअे किसी प्रकार आडम्बर नहीं करते और वह भी हमारे यहाँकी रूखी रोटी बड़े प्रेमसे हलवा-पूरी समझकर खाते हैं।

अुनको हमारे कष्टोंका ध्यान रहता है। वह जानते हैं कि हमको अुनके लिअे स्थान रिक्त करनेमें कितनी असुविधा हुअी होगी और अुनको यह भी पता रहता है कि वह शीघ्र-से-शीघ्र चले जायेंगे, तो मानों हम अुनके अधिक कृतज्ञ होंगे। सच तो यह है कि हम अिस युगमें अिस प्रकारके मेहमानोंका हृदयसे स्वागत करते हुअे परमात्मासे प्रार्थी हैं कि संसारभरमें यदि मेहमान बनाअे, तो अैसे ही बनाअे।

अीमानकी बात तो यह है कि मैंने मेहमानों तथा अतिथियोंकी जितनी श्रेणियाँ बताअी हैं, वह सब सहनीय हैं। किन्तु अन्तिम और निकृष्ट श्रेणी वह है, जिसका विचार आते ही हृदय काँप अुठता है, रक्त सूख जाता है, विचार-शक्ति शून्य हो जाती है। हमारे पागल होनेमें क्या सन्देह है, जब कि हमने अिस श्रेणीवालोंको भी अपना अतिथि बनाया है और हमको तो स्वयं अपने अूपर अचरज होता है कि किस तरह बनाया। हमारी मूर्खता देखिअे, किसीने

कहा तुम्हारे देहलीवाले मित्र जिनके मुखपर चेचकके दाग हैं और जो कविता भी करते है; जिनका दिमाग जरा चला हुआ-सा है, फलाँ धर्मशालामें ठहरे हुअे हैं। मैं यह सुनते ही बेचैन हो गया, हमारा मित्र और शहरकी धर्मशालामें ठहरे? अुसी क्षण वहाँ पहुँचकर धर्मशालासे अुनको अुनके सामानके साथ अपनी कुटियापर ले आया। यह अेक पाप मेरी ओरसे हुआ, जिसका प्रायश्चित्त मुझे करना पड़ेगा। अगले दिन प्रातःकाल ही अतिथि महोदयने कहा, "वैद्यजीने बादामका निशास्ता और फल ही बता रक्खे हैं। सेव और आँवलेके, मुरब्बेके अतिरिक्त पपीतेका शाक या मूँगकी दाल ले सकते हैं। अब आपको हकीमके आदेशानुसार खानेकी व्यवस्था करनी चाहिये।"

अेक दो दिन बाद बीमार महोदय कहते है कि आपके यहाँ न तो दाल अच्छी बनती है और न शाक अच्छा तैयार होता है। आज दाल और शाक दोनों मिलवाकर बनवाअिये। अच्छा महाशय, यह भी सही और जो अुन्होंने आज्ञा दी अुसका पालन किया गया, अब आप कहते हैं कि—अुस खैर नगरवाले मोचीसे जिससे आपने वह जूता बनवाया था; अेक जूता ले दीजिये। दाम घर पहुँचकर भेज दूँगा।" अेक बार मनमें आया पूछूँ, "क्या हकीमजीने जूता बनवानेको बताया है?" पर चुप रह गया, क्योंकि मैं जूतेके बीचमें पड़ना नहीं चाहता था, अिसलिये मौन रहना ही अुचित समझा।

अिस प्रकार किसी दिन कपड़ेकी मांग टाली गअी, किसी दिन सिनेमा देखनेके आग्रहको रोका गया। किसी दिन यदि

अतिथि-सत्कारकी बहकमें आकर कह दिया—"मेरे मकानपर आप कोअी खानेकी वस्तु अपने दामोंसे न मँगाया करें, मैं आप ही मँगा दिया करूँगा।" तो बस फिर क्या था, महोदय नाराज हो गये। सन्ध्याको मकानपर आते ही मेहमान साहबका अेक पत्र मिला, जिसमें लिखा था—"आपकी अतिथि-सेवाके लिअे धन्यवाद। किन्तु मैं अब अधिक आपका मेहमान बनकर आपकी घृणाका पात्र बनना नहीं चाहता। आपने जो व्यवहार मेरे साथ अपने मकानपर ठहराकर किया है, वह असह्य है। मैं किसी सरायमें रहना, मेहमान बननेकी अपेक्षा अधिक अच्छा समझता हूँ और आपसे बिदा होता हूँ।"

अब फरमाअिये, अिस पत्रको पढ़कर हम मेहमान बनने और बनानेकी क़सम न खावें, तो क्या करें! हमारे मेहमान महोदयको हमारी स्थितिका ज्ञान होना चाहिअे था और यदि वह अपनेको बहुत बड़ा आदमी समझते थे, तो फिर अुन्हें मेहमान बननेकी आवश्यकता ही नहीं थी। अब हमारी तो यह राय है कि संसारसे मेहमानी मेज़बानी दोनों प्रथाओंको शीघ्र बिदा कर दिया जावे और होटलों तथा विश्राम-गृहोंको प्रोत्साहन देकर सर्वत्र अिन्हींकी सृष्टि की जावे।

---

१२. विनोबा भावे

गांधीजीके सिद्धान्तोंपर पूर्ण निष्ठा, विश्वास अेवं तत्परतासे अमल करनेवाले संत विनोबा अेक नैष्ठिक ब्रह्मचारी, प्रखर विद्वान् और कर्मठ समाज-सेवी हैं। गांधीजीकी विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियोंको साकार रूप देने, प्रयोगकी कसौटीपर कसकर अुनकी अुपयोगिता तथा प्रभविष्णुताको सिद्ध करनेमें विनोबाका बड़ा हाथ रहा है। वे स्वभावसे ही अध्ययनशील हैं, और अध्यवसायी हैं। निरंतर विकासशीलता अुनका श्रेष्ठतम गुण है। अुनके विचार, वाणी और आचारमें जैसा अेक-राग है, वैसा अेक-राग बहुत कम लोगोंमें होगा। अुनकी स्मरण-शक्ति आश्चर्य-जनक है।

विनोबा संस्कृतके पंडित हैं। मराठीपर अुनका पूर्ण अधिकार है। हिन्दी, अुड़िया, गुजराती, बँगला आदि भाषाओंका ही नहीं कन्नड़, मलयालम, तामिल, तेलगु और अरबी, फारसी जैसी कठिन भाषाओंका भी अुन्होंने अध्ययन किया है। अुनका आध्यात्मिक ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा है।

नपे-तुले, आडम्बर-हीन शब्दोंमें अपनी बात व्यक्त कर देना विनोबाका खास गुण है। अुनके विचार सुलझे हुअे, अुनके तर्क युक्ति-संगत और अुनके कथन स्पष्ट अेवं संक्षिप्त होते हैं। समाजगत बुराअियों, रूढ़िगत अंध-विश्वासोंके प्रति अेक हल्की चुटकी लेकर ही अुनकी वाणी मौन नहीं हो जाती वरन् अुन समस्याओंका अेक हल भी हम अुसमें पाते हैं। अुनकी भाषा सरल, सुबोध होते हुअे भी विषयको पूर्णतया स्पष्ट करनेवाली होती है।

रचनाअें:—पद्य—गीताअी, संतांचा प्रसाद।

गद्य—मधुकर, विनोबाके विचार—भाग १ व २, जीवन-दृष्टि, मूलोद्योग कातना, गीता-प्रवचन आदि।

जीवन और शिक्षण

आजकी विचित्र शिक्षण-पद्धतिके कारण जीवनके दो टुकड़े हो जाते हैं। आयुके पहले पन्द्रह-बीस वर्षोंमें आदमी जीनेके झंझटमें न पड़कर सिर्फ शिक्षाको प्राप्त करे और बादको शिक्षणको बस्तेमें लपेट रखकर मरनेतक जिये।

यह रीति प्रकृतिकी योजनाके विरुद्ध है। हाथभर लंबाअीका बालक साढ़े तीन हाथका कैसे हो जाता है, यह अुसके अथवा औरोंके ध्यानमें भी नहीं आता। शरीरकी वृद्धि रोज होती रहती है। यह वृद्धि सावकाश, क्रम-क्रमसे, थोड़ी-थोड़ी होती है। अिसलिअे अुसके होनेका भानतक नहीं होता। यह नहीं होता कि आज रातको सोये तब दो फुट अूँचाअी थी और सबेरे अुठकर देखा तो ढाअी फुट हो गअी। आजकी शिक्षण-पद्धतिका तो यह ढंग है कि अमुक वर्षके बिलकुल आखिरी दिनतक मनुष्य जीवनके विषयमें पूर्ण रूपसे गैरजिम्मेदार रहे तो भी कोअी हर्ज नहीं; यही नहीं; अुसे गैरजिम्मेदार रहना चाहिअे और आगामी वर्षका पहला दिन निकले कि सारी जिम्मेदारी अुठा लेनेको तैयार हो जाना चाहिअे।

संपूर्ण गैरजिम्मेदारीसे संपूर्ण जिम्मेदारीमें कूदना तो अेक हनुमान-कूद ही हुअी। अैसी हनुमान-कूदकी कोशिशमें हाथ-पैर टूट जायें तो क्या अचरज।

भगवानने अर्जुनसे कुरुक्षेत्रमें भगवद्गीता कही। पहले भगवद्गीताके 'क्लास' लेकर फिर अर्जुनको कुरुक्षेत्रमें नहीं ढकेला तभी अुसे वह गीता पची। हम जिसे जीवनकी तैयारीका ज्ञान कहते हैं अुसे जीवनसे बिल्कुल अलिप्त रखना चाहते हैं, अिसलिये अुक्त ज्ञानसे मौतकी ही तैयारी होती है।

बीस बरसका अुत्साही युवक अध्ययनमें मग्न है। तरह-तरहके अूँचे विचारोंके महल बना रहा है। "मैं शिवाजी महाराजकी मातृभूमिकी सेवा करूँगा। मैं वाल्मीकि-सा कवि बनूँगा। मैं न्यूटनकी तरह खोज करूँगा।" अेक, दो, चार जाने क्या-क्या कल्पना करता है। अैसी कल्पना करनेका भाग्य भी थोड़ोंको ही मिलता है। पर जिनको मिलता है अुनकी ही बात लेते हैं। अिन कल्पनाओंका आगे क्या नतीजा निकलता है? जब नोन-तेल-लकड़ीके फेरमें पड़ा, जब पेटका प्रश्न सामने आया, तो बेचारा दीन बन जाता है। जीवनकी जिम्मेदारी क्या चीज है आजतक अिसकी बिल्कुल ही कल्पना नहीं थी। और अब तो पहाड़ सामने खड़ा हो गया। फिर क्या करता है? फिर पेटके लिये बन-बन फिरनेवाले शिवाजी, करुण-गीत गानेवाले वाल्मीकि, और कभी नौकरीकी तो कभी औरतकी, कभी लड़कीके लिये वरकी और अन्तमें श्मशानकी शोध करनेवाले न्यूटन—अिस प्रकारकी भूमिकाअें लेकर अपनी कल्पनाओंका समाधान करता है। यह हनुमान-कूदका फल है।

मैट्रिकके अेक विद्यार्थीसे पूछा—"क्यों जी, तुम आगे क्या करोगे?"

"आगे क्या ? आगे कॉलेजमें जाऊँगा।"

"ठीक है। कालेजमें तो जाओगे। लेकिन अुसके बाद ? यह सवाल तो बना ही रहता है।"

"सवाल तो बना रहता है। पर अुसका अभीसे विचार क्यों किया जाय ? आगे देखा जायगा।"

फिर तीन साल बाद अुसी विद्यार्थीसे वही सवाल पूछा।

"अभीतक कोअी विचार नहीं हुआ।"

"विचार हुआ नहीं यानी ? लेकिन विचार किया था क्या ?"

"नहीं साहब, विचार किया ही नहीं। क्या विचार करें ? कुछ सूझता नहीं। पर अभी डेढ़ बरस बाकी है। आगे देखा जायगा।"

'आगे देखा जायगा' ये वही शब्द हैं जो तीन वर्ष पहले कहे गये थे। पर पहलेकी आवाजमें बेफिक्री थी। आजकी आवाजमें थोड़ी चिंताकी झलक थी।

फिर डेढ़ वर्ष बाद अुसी प्रश्नकर्त्ताने अुसी विद्यार्थीसे— अथवा कहो अब 'गृहस्थ' से वही प्रश्न पूछा। अिस बार चेहरा चिंताक्रान्त था। आवाजकी बेफिक्री बिल्कुल गायब थी। 'ततः किं? ततः किं? ततः किम्?' यह शंकराचार्यका पूछा हुआ सनातन सवाल अब दिमागमें कसकर चक्कर लगाने लगा था। पर पास जवाब था नहीं।

आजकी मौत कलपर ढकेलते-ढकेलते अेक दिन अैसा आ जाता है कि अुस दिन मरना ही पड़ता है। यह प्रसंग अुनपर

नहीं आता जो 'मरणके पहले ही' मर लेते हैं, जो अपना मरण आँखोंसे देखते हैं। जो मरणका अगाअू अनुभव लेते हैं, अुनका मरण टलता है और जो मरणके अगाअू अनुभवसे जी चुराते हैं, खींचते हैं अुनकी छातीपर मरण आ पड़ता है। सामने खंभा है यह बात अंधेको अुस खंमेका छातीमें प्रत्यक्ष धक्का लगनेके बाद मालूम होती है। आँखवालेको यह खंभा पहले ही दिखाअी देता है अतः अुसका धक्का अुसकी छातीको नहीं लगता।

जिन्दगीकी जिम्मेदारी कोअी निरी मौत नहीं है और मौत ही कौन अैसी बड़ी 'मौत' है? अनुभवके अभावसे यह सारा 'हौआ' है। जीवन और मरण दोनों आनंदकी वस्तु होनी चाहिअे। कौन पिता है जो अपने बच्चोंके लिये परेशानीकी जिंदगी चाहेगा? तिसपर अीश्वरके प्रेम और करुणाका कोअी पार है? वह अपने लाड़ले बच्चोंके लिये सुखमय जीवनका निर्माण करेगा कि परेशानी और झंझटोंसे भरा जीवन रचेगा! कल्पनाकी क्या आवश्यकता है, प्रत्यक्ष ही देखिये न। हमारे लिये जो चीज जितनी जरूरी है अुसके अुतनी ही सुलभतासे मिलनेका अिन्तजाम अीश्वरकी ओरसे है। पानीसे हवा ज्यादा जरूरी है तो अीश्वरने पानीसे हवाको अधिक सुलभ किया है। जहाँ नाक है वहाँ हवा मौजूद है। पानीसे अन्नकी जरूरत कम होनेकी वजहसे पानी प्राप्त करनेकी बनिस्बत अन्न प्राप्त करनेमें अधिक परिश्रम करना पड़ता है। 'आत्मा' सबसे अधिक महत्वकी वस्तु होनेके कारण वह हरअेकको हमेशाके लिये दे डाली गअी है। अीश्वरकी अैसी

प्रेम-पूर्ण योजना है। अिसका खयाल न करके हम निकम्मे जड़ जवाहरात जमा करने-जितने जड़ बन जायँ तो तकलीफ हमें होगी ही। पर यह हमारी जड़ताका दोष है, अीश्वरका नहीं।

जिन्दगीकी जिम्मेदारी कोअी डरावनी चीज नहीं है, वह आनंदसे ओतप्रोत है, बशर्ते कि अीश्वरकी रची हुअी जीवनकी सरल योजनाको ध्यानमें रखते हुअे अनुपयुक्त वासनाओंको दबाकर रखा जाय। पर जैसे वह आनंदसे भरी हुअी वस्तु है वैसे ही शिक्षासे भी भरपूर है। यह पक्की बात समझनी चाहिये कि जो जिन्दगीकी जिम्मेदारीसे वंचित हुआ वह सारे शिक्षणका फल गँवा बैठा। बहुतोंकी धारणा है कि बचपनसे ही जिन्दगीकी जिम्मेदारीका खयाल अगर बच्चोंमें पैदा हो जाय तो जीवन कुम्हला जायगा। पर जिन्दगीकी जिम्मेदारीका भान होनेसे अगर जीवन कुम्हलाता हो तो फिर वह जीवन-वस्तु ही रहने लायक नहीं है। पर आज यह धारणा बहुतेरे शिक्षण-शास्त्रियोंकी भी है और अिसका मुख्य कारण है जीवनके विषयमें दुष्ट कल्पना। जीवन मानी कलह, यह मान लेना। अीसपनीतिके अरसिक माने हुअे परन्तु वास्तविक मर्मको समझनेवाले मुर्गेसे सीख लेकर ज्वारके दानोंकी अपेक्षा मोतियोंको मान देना छोड़ दिया तो जीवनके अन्दरका कलह जाता रहेगा और जीवनमें सहकार दाखिल हो जावेगा। बन्दरके हाथमें मोतियोंकी माला (मरकट—भूषण अंग) यह कहावत जिन्होंने गढ़ी है अुन्होंने मनुष्योंका मनुष्यत्व सिद्ध न करके मनुष्यके पूर्वजोंके सम्बन्धमें डार्विनका सिद्धान्त ही सिद्ध किया है। 'हनूमानके हाथमें

मोतियोंकी माला' वाली कहावत जिन्होंने रची वे अपने मनुष्यत्वके प्रति वफादार रहे।

जीवन अगर भयानक वस्तु हो, कलह हो, तो बच्चोंको अुसमें दाखिल मत करो और खुद भी मत जियो। पर वह अगर जीने लायक वस्तु हो तो लड़कोंको अुसमें जरूर दाखिल करो। बिना अुसके अुन्हें शिक्षण नहीं मिलनेका। भगवद्गीता जैसे कुरुक्षेत्रमें कही गअी वैसे शिक्षा जीवन-क्षेत्रमें देनी चाहिअे— दी जा सकती है। 'दी जा सकती है' यह भाषा भी ठीक नहीं है। वहीं वह मिल सकती है।

अर्जुनके सामने प्रत्यक्ष कर्तव्य करते हुअे सवाल पैदा हुआ। अुसका अुत्तर देनेके लिये भगवद्गीता निर्मित हुअी। अिसीका नाम शिक्षा है। बच्चोंको खेतमें काम करने दो। वहाँ कोअी सवाल पैदा हो तो अुसका अुत्तर देनेके लिये सृष्टि-शास्त्र अथवा पदार्थ-विज्ञानकी या दूसरी जिस चीजकी जरूरत हो अुसका ज्ञान दो। यह सच्चा शिक्षण होगा। बच्चोंको रसोअी बनाने दो। अुसमें जहाँ जरूरत हो रसायन-शास्त्र सिखाओ। पर असली बात यह है कि अुनको 'जीवन जीने दो'। व्यवहारमें काम करनेवाले आदमीको भी शिक्षण मिलता ही रहता है। वैसे ही छोटे बच्चोंको भी मिले। भेद अितना ही होगा कि बच्चोंके आस-पास जरूरतके अनुसार मार्ग-दर्शन करानेवाले मनुष्य मौजूद हों। यह आदमी भी 'सिखानेवाले' बनकर 'नियुक्त' नहीं होंगे। वे भी 'जीवन जीनेवाले' हों, जैसे व्यवहारमें आदमी जीवन जीते हैं। अंतर अितना

ही है कि अिन 'शिक्षक' कहलानेवालोंका जीवन विचारमय होगा, अुसमेंके विचार मौकेपर बच्चेको समझाकर बतानेकी योग्यता अुनमें होगी। पर 'शिक्षक' नामके किसी स्वतंत्र धंधेकी जरूरत नहीं है, न 'विद्यार्थी' नामके मनुष्य-कोटिसे बाहरके किसी प्राणी की। और 'क्या करते हो' पूछनेपर 'पढ़ता हूँ' या 'पढ़ाता हूँ' असे जवाब की जरूरत नहीं है। 'खेती करता हूँ' अथवा 'बुनता हूँ' असा शब्द पेशेवर कहिये व्यावहारिक कहिये। पर जीवन के भीतरसे अुत्तर आना चाहिअे। अिसके लिये अुदाहरण विद्यार्थी राम-लक्षमण और गुरु विश्‍वामित्रका लेना चाहिअे। विश्वामित्र यज्ञ करते थे। अुसकी रक्षाके लिये अुन्होंने दशरथसे लड़कोंकी याचना की। अुसी कामके लिये दशरथने लड़कोंको भेजा। लड़कोंमें भी यह जिम्मेदारीकी भावना थी कि हम यज्ञ-रक्षणके 'काम' के लिये जाते हैं। अुसमें अुन्हें अपूर्व शिक्षा मिली। पर यह बताना हो कि राम-लक्षमणने क्या किया, तो कहना होगा कि 'यज्ञ-रक्षा की', 'शिक्षण प्राप्त किया' नहीं कहा जायगा। पर शिक्षण अुन्हें मिला जो मिलना ही था!

शिक्षण कर्तव्य-कर्मका आनुषंगिक फल है। जो कोअी कर्तव्य करता है अुसे जाने अनजाने वह मिलता ही है। लड़कोंको भी वह अुसी तरह मिलना चाहिअे। औरोंको वह ठोकरें खा-खाकर मिलता है। छोटे लड़कोंमें आज अुतनी शक्ति नहीं आअी है, अिसलिये अुनके आसपास असा वातावरण बनाना चाहिअे कि वे बहुत ठोकरें न खाने पायँ, और धीरे-धीरे वे स्वावलंबी बनें असी अपेक्षा और योजना होनी चाहिअे। शिक्षण फल है। और 'मा

फलेषु कदाचन' यह मर्यादा अिस फलके लिये भी लागू है। खास शिक्षणके लिये कोअी कर्म करना यह भी सकाम हुआ—और अुसमें भी 'अिदमद्य मया लब्धम्',—आज मैंने यह पाया, 'अिद प्राप्स्ये'—कल वह पाअूँगा, अित्यादि वासनाअें आती ही हैं। अिसलिये अिस 'शिक्षण-मोह' से छूटना चाहिअे। अिस मोहसे जो छूटा अुसे सर्वोत्तम शिक्षण मिला समझना चाहिअे। माँ बीमार है, अुसकी सेवा करनेमें मुझे खूब शिक्षण मिलेगा। पर अिस शिक्षाके लोभसे मुझे माताकी सेवा नहीं करनी है। वह तो मेरा पवित्र कर्तव्य है, अिस भावनासे मुझे माताकी सेवा करनी चाहिअे। अथवा माता बीमार है और अुसकी सेवा करनेसे मेरी दूसरी चीज—जिसे मैं 'शिक्षण' समझता हूँ वह—जाती है तो अिस शिक्षणके नष्ट होनेके डरसे मुझे माताकी सेवा नहीं टालनी चाहिअे।

प्राथमिक महत्वके जीवनोपयोगी परिश्रमको शिक्षणमें स्थान मिलना चाहिअे। कुछ शिक्षण-शास्त्रियोंका अिसपर यह कहना है कि यह परिश्रम शिक्षणकी दृष्टिसे ही दाखिल किये जायँ पेट भरनेकी दृष्टिसे नहीं। आज 'पेट भरनेका' जो विकृत अर्थ प्रचलित है अुससे घबराकर यह कहा जाता है और अुस हद तक वह ठीक है। पर मनुष्यको 'पेट' देनेमें अीश्वरका हेतु है। अीमानदारीसे 'पेट भरना' मगर मनुष्य साध ले तो समाजके बहुतेरे दुःख और पातक नष्ट ही हो जायँ। अिससे मनुने 'योऽर्थशुचिः'— जो आर्थिक दृष्टिसे पवित्र है वही पवित्र है, यह अुद्गार प्रकट किया है। 'सर्वेषामविरोधेन' कैसे जियें, अिस शिक्षणमें सारा शिक्षण समा जाता है। अविरोधवृत्तिसे

शरीर-यात्रा करना मनुष्यका प्रथम कर्तव्य है। यह कर्तव्य करनेसे ही अुसकी आध्यात्मिक अुन्नति होगी। अिसीसे शरीर-यात्राके लिये अुपयोगी परिश्रम करनेको ही शास्त्रकारोंने 'यज्ञ' नाम दिया है। 'अुदर-भरण नोहे जाणिजे यज्ञकर्म'—यह अुदर-भरण नहीं है, अिसे यज्ञ-कर्म जान। वामन पंडितका यह वचन प्रसिद्ध है। अतः मैं शरीर-यात्राके लिये परिश्रम करता हूँ यह भावना अुचित है। शरीर-यात्रासे मतलब अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर की यात्रा न समझकर समाज-शरीरकी यात्रा यह अुदार अर्थ मनमें बैठाना चाहिअे। मेरी शरीर-यात्रा मानी समाज की सेवा और अिसीलिये ओीश्वरकी पूजा अितना समीकरण दृढ होना चाहिये। यह भावना हरेकमें होनी चाहिअे। अिसलिअे वह छोटे बच्चोंमें भी होनी चाहिअे। अिसके लिये अुनकी शक्ति भर अुन्हें जीवन में भाग लेनेका मौका देना चाहिअे, और जीवन को मुख्य केन्द्र बनाकर अुसके आसपास आवश्यकतानुसार सारे शिक्षण की रचना करनी चाहिअे।

अिससे जीवनके दो खण्ड न होंगे। जीवनकी जिम्मेदारी अचानक आ पड़नेसे अुत्पन्न होनेवाली अड़चन पैदा न होगी। अनजाने शिक्षा मिलती रहेगी पर 'शिक्षणका मोह' नहीं चिपकेगा और निष्काम कर्मकी ओर प्रवृत्ति होगी।

---

१३. अेस. अेम. बुखारी

अुर्दूके हास्य-रसके प्रसिद्ध लेखक श्री बुखारीकी शैलीमें लोच और सौन्दर्य है। आपके व्यंग्य बड़े चुटीले और हृदयपर प्रभाव डालनेवाले होते हैं। सीधी-सादी भाषामें आप वर्तमान समस्याओंपर अैसी चुभती फब्तियाँ कस देते हैं, जिनके तीव्र कशाघातसे प्राण मानो तिलमिला अुठते हैं। आपके हास्यमें अेक श्लिष्ट व्यंग रहता है, जो हृदय-पटपर गहरा चिन्ह छोड़ जाता है।

रचनाअें :—कअी सामयिक निबंध।

कुत्ते

पशु-विज्ञानके प्रोफेसरोंसे पूछा, सालोत्तरियोंसे दरियाफ़्त किया, सिर खपाते रहे; लेकिन कभी समझमें ही न आया कि आखिर कुत्तोंसे फ़ायदा क्या है? गायको लीजिये, दूध देती है; बकरीको लीजिये, दूध देती है; यह कुत्ते क्या करते हैं? अब जनाब वफ़ादारी अगर अिसीका नाम है कि शामको सात बजेसे जो भूँकना शुरू किया तो लगातार बिना दम लिये, सुबहके छः बजे तक भूँकते चले गये, तो हम लंडूरे ही भले।

कल-ही-की बात है कि रातको कोअी ग्यारह बजे अेक कुत्तेकी तबियत जो जरा गुदगुदाअी तो उसने बाहर सड़कपर आकर मानो पूर्तिके लिअे अेक समस्या ही दे डाली। अेक-आध मिनट बाद सामनेसे बंगलेके कुत्तेने अुसे दुहरा दिया। अब जनाब, अेक पुराने अभ्यस्त अुस्तादको जो गुस्सा आया, तो अेक हलवाअीकी भट्टीसे बाहर लपका और भन्नाके अुसकी पूर्ति कर डाली। अिसपर अुत्तर-पूरबकी ओरसे अेक मर्मज्ञ कुत्तेने ज़ोरसे दाद दी। अब तो मुशायरा वह गरम हुआ कि कुछ न पूछिये! कम्बख़्त बाज़-बाज़ तो लम्बे-लम्बे कवित्त और छप्पय जोड़कर सुना गये! वह हंगामा गरम हुआ कि ठंडा होने ही न आता था। हमने खिड़कीसे हज़ारों दफ़ा 'आर्डर-आर्डर' पुकारा, लेकिन अैसे मौक़ोंपर सभापतिकी भी कोअी

कभी सुनता है ! अब अिनसे कोअी पूछे कि मियाँ, तुम्हें अैसा ज़रूरी मुशायरा करना था तो दरियाके किनारे खुली हवामें जाकर अपनी प्रतिभा दिखाते। घरोंके बीचमें आकर सोतोंको सताना कौन-सी शराफत है ?

फिर हम देशी लोगोंके कुत्ते भी कुछ अजीब बदतमीज़ होते हैं। अकसर तो अिनमें अैसे देशभक्त होते हैं कि कोट-पटलून देखते ही भूँकने लग जाते हैं। खैर, यह तो अेक हदतक तारीफ़के लायक भी है। अिसका जिक्र ही जाने दीजिये।

अिसके सिवाय अेक और बात है। हमें बहुत बार डालियाँ लेकर साहब लोगोंके बंगलोंपर जानेका मौक़ा आया है। खुदाकी कसम, साहबोंके कुत्तोंमें वह सभ्यता देखी कि वाह-वाह करके लौटे। ज्यों ही बंगलेके फाटकमें दाखिल हुअे, त्यों ही कुत्तेने बरामदे ही में खड़े-खड़े अेक हल्की-सी 'बख' कर दी और वह फिर मुँह बन्द करके खड़ा हो गया। हम आगे बढ़े, तो अुसने भी चार क़दम आगे बढ़कर अेक नाजुक और पाक आवाज़में फिर 'बख' कर दी। चौकीदारीकी चौकीदारी और संगीतका संगीत। अिधर हमारे कुत्ते हैं कि न राग, न सुर, न सिर, न पैर। तान-पे-तान लगाये जाते हैं, बेताल कहींके। न मौका देखते हैं, न वक्त पहचानते हैं। गलेबाजी किये चले जाते हैं। घमंड अिस बातका है कि तानसेन अिसी मुल्कमें तो पैदा हुअे थे।

अिसमें संदेह नहीं कि कुत्तोंसे हमारा सम्बन्ध जरा खिंचा हुआसा रहा है; लेकिन हमसे कसम ले लीजिअे, जो अैसे मौकोंपर

हमने कभी अहिंसा छोड़कर सत्याग्रहसे मुँह मोड़ा हो। शायद असे आप झूठ समझें; लेकिन खुदा गवाह है कि आजतक कभी किसी कुत्तेपर हाथ अुठ ही न सका। अगरचे दोस्तोंने सलाह दी कि रातके वक्त 'लाठी या छड़ी जरूर हाथमें रखनी चाहिये - क्योंकि वह बिल्लियोंको दूर रखती है; परन्तु, हम किसीसे योंही बैर मोल लेना नहीं चाहते। कुत्तेके भूँकते ही हमारी स्वाभाविक शिष्टता हमपर अितना अधिकार कर लेती है कि अगर आप हमें अुस वक्त देखें, तो सचमुच यही समझेंगे कि हम डरपोक हैं। शायद अुस वक्त आप यह भी अनुमान करलें कि हमारा गला सूखा जाता है। यह अलबत्ता ठीक है। असे मौकेपर यदि मैं गानेकी कोशिश करूँ तो षड्जके सुरोंके सिवा और कुछ नहीं निकलता। अगर आपने भी हमारी जैसी तबीयत पाअी हो, तो आप देखेंगे कि ऐसे मौकेपर अीश्वरकी सर्वव्यापकता आपकी समझसे दूर हो जायगी और अुसकी जगह आप शायद मार्ग-प्रदर्शनकी प्रार्थना पढ़ने लग जायेंगे।

कभी कभी अैसा प्रसंग आया है कि रातके दो बजे छड़ी घुमाते थियेटरसे वापस आरहे हैं और नाटकके किसी-न-किसी गीतकी तर्ज बुद्धिमें बिठानेकी कोशिश कर रहे हैं। चूँकि गीतके शब्द याद नहीं हैं और नये अभ्यासका जमाना भी है, अिसलिअ सीटीपर ही सन्तोष किया है। अगर बेसुरे भी हो गये हैं तो सुननेवालोंने यही समझा कि यह अंग्रेजी संगीत है। अितनेमें अेक मोड़पर जो मुड़े तो सामने अेक बकरी बँधी है। जरा मेरी कल्पनाको तो देखिये, मैंने अुसे भी कुत्ता समझा। अेक तो कुत्ता, दूसरे बकरीके बराबर

लम्बा चौड़ा। बस, अुसे देखते ही हाथ-पाँव फूल गये। छड़ीका हिलना कम होते होते हवामें अेक विचित्र कोणपर जा रुका। सीटीका संगीत भी थर-थराकर मौन हो गया; लेकिन क्या मजाल, कि हमारी थूथनीकी तराशी हुअी सूरतमें जरा भी फर्क आया हो। मालूम होता था कि बे-आवाज लय अभी तक निकल रही है। डाक्टरोंका सिद्धान्त है कि अैसे मौकेपर अगर सर्दीके मौसिममें भी पसीना आ जाय तो कोअी हर्ज नहीं। बादमें फिर सूख जाता है।

चूँकि हम स्वभावसे थोड़ा सावधान रहते हैं, अिसलिये आजतक कुत्तेके काटनेका कभी अित्तिफ़ाक़ नहीं हुआ,—यानी किसी कुत्तेने आजतक हमको नहीं काटा। अगर अैसी दुर्घटना कभी हुअी होती, तो अिस कहानीके बदले हमारा मर्सिया छप रहा होता और क़ब्रपर प्रार्थनाकी यह तुक लिखी होती—

‘अिस कुत्तेकी मिट्टीसे भी कुत्ता-घास पैदा हो।’

जबतक अिस दुनियामें कुत्ते मौजूद हैं और वे भूँकनेपर तुले हुअे हैं तबतक यही समझिये कि हम क़ब्रमें पाँव लटकाये बैठे हैं। फिर अिन कुत्तोंके भूँकनेके सिद्धान्त भी निराले हैं। यह अैसा छुतैला रोग है, जो बच्चे, जवान, बूढ़े सभीको होता है। अगर कोअी खुर्राट सिकन्दर कुत्ता अपने रोब और दबदबेको कायम रखनेके लिये भूँक ले, तो हम भी कह दें कि अच्छा भअी, भूँक (यद्यपि अैसे समयमें अुसको जंजीरसे बँधा होना चाहिअे), लेकिन ये कम्बख्त तो दो-दो बरसकी अुम्रके, दो-दो तीन-तीन तोलेके पिल्ले भी तो भूँकनेसे बाज़ नहीं आते! बारीक आवाज, जरा-सा फेंफड़ा,

अुसपर भी अितना ज़ोर लगाकर भूँकते हैं कि आवाज़की थर्राहट दुमतक पहुँचती है। फिर भूँकते हैं चलती मोटरके सामने आकर, मानो अुसे रोक ही तो लेंगे! अब अगर मैं मोटर चला रहा होअूँ, तो निश्चय ही हाथ काम करनेसे अिनकार कर देंगे, लेकिन हर कोअी तो यों अुनकी जान नहीं बचा देगा!

कुत्तोंके भूँकनेपर मुझे सबसे बड़ा अेतराज यह है कि अुनकी आवाज सोचनेकी तमाम शक्तियोंको गायब कर देती है। खास तौरपर तब, जब किसी दूकानके तख़्तेके नीचेसे अुनका अेक पूरा गुप्त अधिवेशन सड़कपर आकर अपना काम शुरू कर दे। तब, आप ही कहिये कि भला होश ठिकाने रह सकते हैं! हर अेककी तरफ बारी बारी से ध्यान देना पड़ता है। कुछ तो अुनका शोर और कुछ अुनकी विचार-धाराकी आवाज (ओठोंके भीतर ही); बेढ़ंगी हरकतें और निश्चलता (हरकतें अुनकी और निश्चलता हमारी), अिस हंगामेमें दिमाग भला खाक काम कर सकता है। यद्यपि यह मुझे भी नहीं मालूम कि अैसे मौकेपर अगर दिमाग काम करे भी, तो क्या तीर मारेगा! कुत्तोंका यह परले सिरेका अन्याय मेरे नज़दीक हमेशा घृणाके योग्य रहा है। अगर अुनका कोअी प्रतिनिधि शिष्टता के साथ आकर हमसे कह दे, "महाशय, सड़क बन्द है," तो खुदाकी कसम बिना कुछ चूँ-चपड़ किये वापस लौट जायँ। और यह कोअी नअी बात नहीं, हमने कुत्तोंके निवेदन पर कअी रातें सड़क नापनेमें बिता दी हैं। लेकिन पूरीकी पूरी सभाका यों अेक मतसे, सम्मिलित रायसे, सीनाजोरी करना बड़ी भारी भूल है। कुत्ते

भी अिस व्यापक नियमके अपवाद नहीं हैं। आपने अीश्वरसे डरनेवाला कुत्ता भी जरूर देखा होगा। प्राय: अुसके शरीरपर तपस्याके चिन्ह दीख पड़ते हैं। जब चलता है, तो अैसी विनम्रता और लाचारीसे मानों पापोंके भारका ज्ञान आँख अुठाने नहीं देता। दुम अकसर पेटके साथ लगी होती है। वह सड़कके बीचोंबीच आत्मचिन्तनके लिअे लेटकर आँखें बन्द कर लेता है। सूरत बिल्कुल दार्शनिकों—फिलासफरों—से मिलती है। किसी गाड़ीवालेने लगातार बिगुल बजाया, गाड़ीके भिन्न-भिन्न हिस्सोंको खटखटाया, लोगोंसे कहलवाया, खुद दस-बारह बार आवाजें दीं तो, आपने, सिरको वहीं जमीनपर रखे-रखे लाल मस्ती-भरी आँखोंको खोला, परिस्थितिपर अेक नजर डाली और फिर आँखें बन्द करलीं। किसीने अेक चाबुक लगा दिया, तो आप पूरे अितमीनानके साथ वहाँसे अुठकर अेक गजपर जा लेटे और विचार-धाराके सिलसिलेको, जहाँसे वह टूट गया था, वहींसे फिर शुरू कर दिया। किसी बाअिसिकल वालेने घंटी बजाअी तो लेटे-ही-लेटे समझ गये कि बाअिसिकल है। अैसी छिछोरी चीजोंके लिअे रास्ता छोड़ देना वे फकीरी शानके खिलाफ समझते हैं।

रातके वक्त यही कुत्ता अपनी सूखी पतली-सी दुमको जहाँ तक संभव हो सकता है, सड़कपर फैलाकर रखता है। अुससे अुसे केवल अीश्वरके चुने हुअे सेवकोंकी पहचानकी अिच्छा होती है। जहाँ आपने गलतीसे अुसपर पाँव रख दिया, अुसने गुस्सेके लहजेमें आपसे शिकायत शुरू कर दी, “बच्चा, फकीरोंको छेड़ता है!

दिखाअी नहीं देता कि हम साधु लोग यहाँ बैठे हैं ?" बस, अिस साधुकी दुराशीषसे अुसी वक्त रोंगटे खड़े होना शुरू हो जाते हैं। बादमें कअी रातोंतक यही सपने दिखाअी देते रहते हैं कि बेशुमार कुत्ते टाँगोंसे लिपटे हैं और जाने नहीं देते। आँख खुलती है, तो देखते हैं कि पाँव चारपाअीकी अदवानमें फँसे हुअे हैं।

अगर खुदा मुझे कुछ दिनके लिये अिस जातिकी भाँति भूँकने और काटनेकी ताकत दे, तो बदला लेनेका अुन्माद मेरे पास पर्याप्त मात्रामें मौजूद है। धीरे धीरे सब कुत्ते कसौली पहुँच जायँ। फारसीके अेक कविने कहा है कि "हे अुरफी, तू अपने प्रतिद्वन्द्वियोंकी चिल्ल-पोंका अन्देशा न कर। क्योंकि कुत्तोंके भूँकनेसे फकीरोंको जो मिलना होता है अुसमें कमी नहीं होती।" मतलब यह है कि कुत्ते भूँकते रहते हैं और लोग अपनी राह चले जाते हैं।

यही प्रकृतिसे विरुद्ध कविता है, जो अेशियाकी अवनतिका कारण है। अँग्रेजी कहावत है, "भूँकते हुअे कुत्ते काटा नहीं करते।" यह सही है, लेकिन कौन जानता है कि अेक भूँकता हुआ कुत्ता कब भूँकना बन्द कर दे और काटना शुरू कर दे।

---

१४. डा. रघुवीरसिंह

आप सुप्रसिद्ध गद्य-गीतकार, अितिहासमर्मज्ञ तथा हिन्दीके लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक हैं। संस्कृत-निष्ठ हिन्दीके आप हिमायती हैं। आपकी शैली ज़ोरदार, भाषा सजीव और वर्णन मर्मस्पर्शी होते हैं। हिन्दीके साथ साथ आप अंग्रेजीके अच्छे जानकार और विद्वान् लेखक हैं।

रचनाअें:—गद्य—सप्तदीप; शेष स्मृतियाँ; बिखरे फूल; मालवामें युगान्तर; पूर्व-मध्यकालीन भारत।

शेष स्मृतियाँ

स्मृतियाँ, स्मृतियाँ,........अुन गये-बीते दिनोंकी स्मृतियाँ, अुन मस्तानी घड़ियोंकी याद, अुस दीवाने जीवनके वे अेकमात्र अवशेष........और अुन अवशेषोंके भी ध्वंसावशेष, विस्मृतिके काले पटपर भी विलुप्त न हो सकने वाली स्मृतियाँ......। अुनमें कितनी मादकता भरी होती है, कितनी कसकका अुनमें अनुभव होता है, कितना दर्द वहाँ बिखरा पड़ा होता है। सुख और दुःखका यह अनोखा सम्मिश्रण.......अुल्लास और आहें, विलास और दर्दकी टीस, अैश्वर्य तथा दारिद्र्यका अट्टहास........आहें! कितनी निश्वासें, कितनी अुसासे निकली पड़ती हैं। वे ही दो आँखें और अुन्हींमें सुख और दुःखके वे आँसू........।

परन्तु जीवन, मनुष्यका बीता हुआ जीवन वह तो अेक स्मृति है—समय द्वारा भग्न, सुख-दुःख द्वारा जर्जरित तथा मानवीय आकांक्षाओं और भावनाओं द्वारा छिन्न-भिन्न प्रासादका अेक करुणा-पूर्ण अवशेष है। और अैसे अवशेषोंपर बहता है समयका निस्सीम प्रवाह—प्रति दिन लहरें अुठती हैं, ज्वार बढ़ता जाता है और मानव-जीवनके वे अवशेष, जलमग्न खण्डहर, संसारकी आँखोंसे लुप्त पानीमें ही अनायास गल-गलकर नष्ट हो जाते हैं, और........ अुनके स्थानपर रह जाती है स्मृतियोंकी मुठ्ठी भर मिट्टी।

किन्तु अुस मिट्टीमें जीवन होता है; भावनाएँ और वासनाएँ अुसे अुद्दीप्त करती हैं; विस्मृतिकी शीतलता अुसे शान्त करती है, और सुख-दुःखका भीषण अन्धड़ अुन जीवन-कणोंको बिखेरकर पुनः शान्त हो जाता है। अुन स्मृति-कणोंकी अुपेक्षाकर, अुन्हें बिखेरकर, अुन्हें विनष्टकर, समय शान्ति की निश्वास लेता है; किन्तु वे कण अुन स्मृतियोंपर बहाये गये सुख-दुःखके अश्रु-वारिसे पुनः अंकुरित होते हैं, अुन नव-अंकुरित कणोंके आधारपर अुठता है अेक स्वप्न-लोक और अेक बार पुनः हम अुन बीते दिनोंकी मादकता और कसकमें डूबते अुतराते हैं।

समयने अुपेक्षाकी मनुष्यकी, अुसके जीवनके रंगमंचपर विस्मृतिका प्रवाह बहा दिया, परन्तु अुस प्रवाहके नीचे दबा हुआ भी वह अश्रुपूर्ण जीवन मानवीय जीवनको बनाये रखता है। समय, मनुष्यकी अिच्छाओं, आकांक्षाओं, अुसके अुस तड़पते हुए हृदय तथा महत्वाकांक्षा-पूर्ण मस्तिष्कको नष्ट कर सका, किन्तु विस्मृतिके अुस जीवन-लोकमें आज भी विचरती हैं अुन गये बीते दिनोंकी सुधियाँ। जीवनको नष्ट कर सकनेपर भी समय स्मृतियोंके सौंदर्य तथा मनुष्यके भोलेपनके भुलावेमें आ गया। सुन्दरता, अकृत्रिम सुन्दरता और वह नैसर्गिक भोलापन........किसे अिन्होंने आत्म-विस्मृत नहीं किया! कठोर-हृदय समय भी भूल गया अपनी कठोरताको, अपने प्रलयंकारी स्वभावको, और अुस स्वप्न-लोकमें विचरकर वह स्वयं अेक स्मृति बन गया।

× × ×

स्मृतियाँ, मनुष्यके स्वप्न-लोकके, अुसके अुन सुखपूर्ण दिनोंके भग्नावशेष हैं। अिस भूलोकपर अवतरित होकर भी मनुष्य नहीं भूल सकता है अुस सुन्दर स्वर्गीय स्वप्न-लोकको। वह मृगतृष्णा, अुस विशुद्ध कल्पना-लोकमें विचरण करनेकी वह अिच्छा—जीवनभर दौड़ता है मनुष्य अुस अदम्य अिच्छाको तृप्त करनेके लिअे.... ....किन्तु स्वप्न-लोक.......वह तो मनुष्यसे दूर खिंचता ही जाता है, और अुसका वह मनोहारी आकर्षक दृश्य भुलावा दे-देकर ले जाता है मनुष्यको अुस स्थानपर जहाँ वह स्वर्ग, कल्पनाका स्वर्ग स्थायी नहीं हो सकता है। वह अचिरस्थायी स्वर्ग भंग होकर मनुष्यको आहतकर अुसे भी नष्ट कर देता है।

किन्तु अुस स्वप्न-लोकमें, भावनाओंके अुस स्वर्गमें, अेक आकर्षण है, अेक मनमोहक जादू है, जो मनुष्यको अपनी ओर बरबस खींचे जाता है। और अुस स्वप्न-लोककी वे स्मृतियाँ, अुसकी वह दुखद करुण कहानी, अुसके भग्न होनेकी वह व्यथा-पूर्ण कथा........अुसकी असारताको जानते हुअे भी मनुष्य अुसी ओर खिंचा चला जाता है।

वे स्मृतियाँ, भग्नाशाओंके वे अवशेष........कितने अुन्मादक होते हैं! प्रेमकी अुस करुण कहानीको देखकर न जाने क्यों आँखोंमें आँसू भर आते हैं! और अुन भग्न खण्डहरोंमें घूमते घूमते दिलमें तूफान अुठता है, दो आहें निकल पड़ती हैं, अुसासें भर जाती हैं, आँसू ढलक पड़ते हैं और........। अुफ़! अिन खण्डहरोंमें भी जादू भरा है; समयको भुलावा देकर, अब वे मनुष्यको

भुलावा देनेका प्रयत्न करते हैं। भग्न स्वप्न-लोकके, टूटे हुअे हृदयके, अुजड़े स्वर्गके अुन खण्डहरोंने भी अेक नये मानवीय कल्पना-लोककी सृष्टि की। हृदय तड़पता है, मस्तिष्कपर बेहोसी छा जाती है, स्मृतियोंका बवण्डर अुठता है, भावोंका प्रवाह अुमड़ पड़ता है, आँखें डबडबाकर अंधी हो जाती हैं, और अब........ विस्मृतिकी वह मादक मदिरा पीकर........नहीं समझ पड़ता है कि, किधर बहा जा रहा हूँ। धमनियोंमें कम्पन हो रहा है, दिल धड़कता है, मस्तिष्कमें अेक नवीन स्फूर्तिका अनुभव होता है........ पागलपन ? मस्ती ? दीवानापन ? कुछ भी समझमें नहीं आता है कि क्या हो गया है मुझे ? और कहाँ ? किधर ?........यहाँ तो कुछ भी नहीं सूझ पड़ता।

परन्तु........अरे! धीरे धीरे अुठ रही है विस्मृति की वह काली यवनिका, धीरे धीरे लुप्त हो रहा है भूत को वर्तमान से विलग करने वाला वह कुहरा। देखता हूँ अिन करुण स्मृतियोंके मस्ताने दिन, अुनका वह अुत्थान और अुन्हींका यह अंत! अिठलाते हुअे नवयुवा साम्राज्यके युवा-सम्राट् अकबरका वह मदभरा छलकता हुआ यौवन, वह मस्तानी अदा—पागल कर देती है अब भी अुसकी स्मृति। संसार पड़ा लोट रहा था अुसके चरणोंमें, यौवन-साकी मदिराका प्याला भर रहा था, राज्यश्री अुसके सम्मुख नृत्य कर रही थी। किन्तु रूठ गया वह प्रेमी अपनी प्रेयसी नगरीसे, और सधवापनेमें अुस नगरीने विधवा वेष पहिन लिया। लुटा दिया अुसने अपना वह वैभव, टुकड़े टुकड़े कर डाले अपने रंग-बिरंगे वस्त्र-

पट, चीर डाला अपना वक्षःस्थल और अपने भग्न हृदयको अपने प्रेमीके चरणोंमें चढ़ाकर मृत्युसे आलिंगन किया। परन्तु अुसकी माँगका सिन्दूर सधवावस्थाका वह अेकमात्र चिन्ह, और अुसके मस्ताने यौवनकी वह मादकता, आज भी अुस भग्न नगरीके वे अवशेष अुनकी लालीमें रंगे हुअे हैं।

और तब........जहाँगीरकी वह प्रथम कहानी अुस अनारकलीका प्रस्फुटन तथा अुसका कुचला जाना, विनष्ट किया जाना, नूरजहाँकी अुठती हुअी जवानी तथा जहाँगीरके टूटे हुअे दिलपर निरंतर किये जानेवाले वे कठोर आघात........! जहाँगीर प्यालेपर प्याला ढाल रहा था, किन्तु अपने हृदयकी वेदनाको, कसकको नहीं भूल सकता था। अुनका वह अस्थायी मिलन, कुछ ही दिनोंकी वे सुखद घड़ियाँ, तथा अुनका वह चिर-वियोग........। वे तड़पती हुअी आत्माएँ प्रेम-सागरमें नहाकर भी शान्त नहीं हुअीं, और आज भी छातीपर पत्थर रखे, अपने अपने विद्रोही हृदयोंको दबाये हुअे हैं।

शाहजहाँकी वह सुहाग-रात गुज़र गअी आँखोंके सामनेसे। वह प्रथम मिलन, आशा-निराशाके अुस कम्पनशील वातावरणमें वह सुखपूर्ण रात,........छलक पड़ा वह यौवन, बिखर गया वह सुख और निखर गअी मस्ताने यौवनकी वह लाली—अुनने रंग दिया अुसके समस्त जीवनको। किन्तु........अरे! यह क्या? लालीका रंग अुड़ता जाता है, वह यौवन छोड़कर चल देता है, वह मस्ती लौटकर नहीं आती। ज्यों ज्यों जीवन-अर्क अूँचा चढ़ता जाता है, त्यों त्यों लाली श्वेततामें परिवर्तित होती जाती है। और जब लुटा

वह प्रेमलोक........ताज सिरपर धरा था, किन्तु डाल दिया अुसे प्रेयसीके चरणोंमें, और लुटा दिया अपना रहा-सहा सुख भी, शाहजहाँ बैठा रो रहा था। अपने प्रेमको अपनी आँखोंके सामने अुसने मिट्टीमें मिलते देखा। और तब........अुसने अपने दिलपर पत्थर रखकर अपनी प्रेयसीपर भी पत्थर जड़ दिये।

किन्तु सबसे अधिक मोहक था वह भौतिक स्वर्ग, जिसको जहानके शाहने बनवाया था, जिसको जमुनाने अपने दिलके पानीसे ही नहीं सींचा था, किन्तु जिसे राज्यश्रीने भी अभिसिंचित किया था। वहाँ........सौरभ, संगीत और सौन्दर्यका चिर-प्रवाह बहता था; दुःख भूले-भटके भी नहीं आने पाता था। प्रेम-रसके वे सुन्दर जगमगाते हुअे स्फटिक प्याले........प्याले शताब्दियों तक ढले, अुनमें जीवन-रस अुँडेला गया और वहीं मस्तीका नग्न नृत्य भी हुआ। परन्तु अेक दिन मदिराकी लालीको मानव-रुधिरकी लालीने फीका कर दिया, जीवन-रसको सुखानेके लिअे मृत्यु-रूपी हलाहल ढला, मस्तीको विवशताने निकाल बाहर किया, मादकताको करुणाने धक्के दिये, और अन्तमें अुस स्वर्गने अपने खण्डहर देखे, बाल्य-कालकी चीखें सुनीं, अपने यौवनको सिसकते देखा, बूढ़ोंकी निश्वासोंकी हुताग्निमें रही-सही अपनी मादकताको जल-भुनकर खाक होते देखा। आह! स्वर्ग अुजड़ गया, यमुनाका प्रेम-सोता सूख गया, अुसने मुख मोड़ लिया; और अुस स्वर्गके वे देवता, अुस लोकके वे अुपभोक्ता—अुन खण्डहरोंको अेक-नजर देखकर वे भी चल दिये ....चल दिये, छोड़कर चल दिये। स्वर्गने दो हिचकियोंमें

दम तोड़ा, और अुस मृत भग्न स्वर्गको, अुस मस्ताने मदमाते स्वर्गके अुस निर्जीव निश्चेष्ट शवको देखकर ढलक पड़े दो आँसू।

दो आँसू ? हाँ ! गरम-गरम तपतपाये हुअे दो आँसू, निश्वासकी भट्टीमें तपे हुअे वे अश्रु-कण........आह ! ये आँसू भी अिन आँखोंको छोड़कर चल दिये। और साथ ही साथ........अरे! मेरा स्वप्न-लोक भी भग्न हो गया; अुन आँसुओंने अुस स्वर्गको बहा दिया........कुछ होश-सा होता है, कुछ ख़याल आता है, कहाँ था अब तक ? स्वप्न-लोकमें स्वर्गको अुजड़ते देखा था। आह ! स्वप्नमें भी स्वर्ग चिरस्थायी नहीं हो सका। स्वप्न-लोकमें भी वही रोना। मानवीय आकांक्षाएँ भग्न होती हैं, निराशाएँ मुँह बाये अुनका सामना करती हैं, निर्जीव जीवन अुस स्वर्गको तोड़-फोड़ डालता है, तथापि स्वप्न देखनेकी यह लत ! अितने कठोर सत्योंका अनुभवकर, अुन करुणाजनक दृश्योंको देखकर भी पुनः अुन सुखपूर्ण दिनोंकी याद करना ! स्वप्न-लोकमें विचरनेका वह प्रलोभन, तथा मस्ती लाने वाली विस्मृति-मदिराको अेक बार मुँहसे लगाकर ठुकरा देना........इतनी कठोरता........ दिल नहीं कर सकता है अैसी निष्ठुरता।

परन्तु मेरा वह स्वप्न-लोक, मेरे आश्चर्य तथा आनन्दकी वस्तु, अरे ! वह भंग हो गया। स्वप्नमें भी भौतिक स्वर्गको अुजड़ते देखा, अुसके खण्डहरोंका करुणापूर्ण रुदन सुना, अुसकी वे मर्माहत निश्वासें सुनीं, और अुनके साथ ही मैं भी रो पड़ा अुजड़ गया है मेरा स्वप्नलोक, और आज जब होश-सा होता है तो मालूम होता है कि मैं स्वयं भी लुट चुका हूँ।

अुस प्रिय-लोककी वे कोमल सुधियाँ, अुसके अेकमात्र अवशेष, वे सुखद या करुणाजनक स्मृतियाँ—अरे ! अुन्हें भी लूट ले गया यह कठोर निष्ठुर भौतिक जगत् । आज तक मैं स्वप्न देखता था, अुसका आनन्द अुठाता था, हँसता था, रोता था, सिर पीटकर लोटता था, सिसकता था, किन्तु ये सब भाव मेरे अपने थे । अुन्हें मैं अपने हृदयमें, अपने दिलके पहलूमें, अुन्हें अपनी अेकमात्र निधि समझे छिपाये रखता था । कितनी आराधनाके बाद अुस स्वप्न-लोकका आविर्भाव हुआ था और अुस स्वप्नको देखनेमें, अपने अुस प्यारे लोकमें विचरते विचरते कितने दिन रात और कितनी रातें दिन हो गयी थीं । और अिस प्यारसे पाले पोसे गये अुस मस्ताने पागलपनके विचार, अुन दिनोंके वे भाव जब अनेक बार जी ललचकर रह जाता था, जब वासनाअें अुद्दाम होनेको छटपटाती थीं, जब आकांक्षाअें मुक्त होनेको तड़पती थीं, जब अुस स्वप्न-लोकमें विचर विचरकर मैं भी अुन महान् प्रेमियोंके प्रेम तथा अुनके जीवनके मादक और करुणाजनक दृश्य देखता था, अुनके साथ अुल्लासपूर्वक कल्लोल करता था, अुन्हींके दर्दसे दुखी रोता था, आँसू बहाता था । किन्तु वे दिन........अब स्वप्न हो गये; और अुन दिनोंकी स्मृतियाँ—अुन अनोखे दिनोंकी अेकमात्र यादगार—भी अब मेरी अपनी न रही । अुस मस्तीमें, अुस बेहोशीमें मैं न जाने क्या क्या बक गया—और जो भाव अब तक मेरे हृदयमें छिपे पड़े थे वे अब पराये हो गये । आज भी अुन्हें पढ़कर वे ही पुराने दिन याद आ जाते हैं: अुस स्वप्न-लोकका वह आरम्भ और

अुसका यह अन्त ! और जब फिर सुध हो जाती है अुन दिनोंकी, तब पुनः मस्ती चढ़ती है या दर्दके मारे कसकता हूँ। परन्तु अब वे पराये हो गये तो रहे-सहेका मोह छोड़कर सब कुछ खुले हाथों लुटाने निकला हूँ आज।

हाँ ! अपने भावोंको लुटाने निकला हूँ, परन्तु फिर भी किस दिलसे अुन्हें कहूँ कि जाओ। बरसोंका साथ छूट रहा है। यह सत्य है कि यह रही-सही स्मृतियाँ अपने स्वप्नलोककी याद दिलाकर हृदयमें दुःखका प्रवाह अुमड़ा देती हैं, वे दिलमें बहुत दर्द पैदा करती हैं, फिर भी वे मेरी अपनी वस्तु रही हैं। अपनी प्यारी वस्तुको बिदा देते, अपने हृदयमें जिसे अेक आश्रय दिया था, बड़े आदर तथा प्रेमसे जिसे हृदयमें छिपाये रखा था, अुससे बिलगाव........ आह ! आज खेद अवश्य होता है।........जानता हूँ कि वे पराये हो चुके हैं, फिर भी आज अुनको सर्वदाके लिअे बिदा करते दो आँसू ढलक पड़ते हैं। अब किन्हें मैं अपनी अेकमात्र सम्पत्ति समझूँगा ? किन्हें अपनी वस्तु जानकर दिलमें छिपाये फिरूँगा, और संसारसे छिपा-छिपाकर अेकान्तमें अुन्हें बार बार देखकर तथा अुन्हें अपने हृदयमें स्थित जानकर स्वयंको भाग्यवान् व्यक्ति समझूँगा ?

बिदा ! अलबिदा ! अब कहाँ तक यह लाग-लपेट ? परन्तु जब जुदा हो रहे हैं, ममता लिपट रही है, बेबसी खड़ी रो रही है, करुणा बेहोश पड़ी सिसक रही है और........मेरा दुर्भाग्य, वह तो खड़ा मुस्कराता ही जाता है। परन्तु आज तो सबसे अधिक भविष्यकी चिन्ता सता रही है। विचारमात्रसे ही दिल दहल अुठता

है। अपने स्वप्न-लोकके अवशेष—वे भग्नावशेष ही क्यों न हों, हैं तो मेरे कल्पना-लोकके खण्डहर,—मेरे हृदयके वे सुकोमल भाव, आज वे निराश्रय अिस कठोर भौतिक जगत्में अिस कठोर लोकमें जहाँ मानवीय भावोंका कोअी खयाल नहीं करता, मानवीय अिच्छाओं तथा आकांक्षाओंका अुपहास करना अेक स्वाभाविक बात है, जहाँ मानवीय हृदयके साथ खेल करनेमें ही आनन्द आता है, तड़पते हुअे आहत हृदयपर चोट करना मनोरंजनकी अेक सामग्री है........ ओह ! अब आगे कुछ भी नहीं सोच सकता।

बिदा तो दे चुका हूँ परन्तु अुनके आश्रयके लिअे किससे कहूँ? क्यों कहूँ? कुछ कहनेसे भी क्या होगा? अुनके साथ अब क्या मेरा सम्बन्ध रह गया है? और जब वे पराये हो चुके हैं........परन्तु हाँ, फिर भी अपनी सदिच्छाओंको तो अुनके साथ अिस संसारमें भेज सकता हूँ। अधिक नहीं तो यही सही। सो अब अन्तिम बिदा !

"भवन्तु शुभास्ते पन्थानः"।

परिशिष्ट

[कठिन शब्दार्थ व प्रश्नावली]

१. चित्रकार से

(श्री वियोगी हरि)

शब्दार्थ :—

गज़बकी-अनोखी, अपूर्व
अनासक्त-निरीच्छ, आसक्तिहीन
अटपटी-बेढंगी, बेतुकी
प्रतिहिंसा-बदला, प्रतिशोध
फलितार्थ-अभीष्ट परिणाम
गतिविधि-चाल-ढाल, रंग-ढग
भूलभुलैया-चक्कर या घुमाव जिसमें लोग ऐसे भूल जाते हैं कि बाहर निकलना कठिन हो जाता है।
अर्जनार्थ-प्राप्त करनेके लिये, कमानेके लिये
तूलिका-चित्र या तसवीर बनानेकी कलम
धाँय धाँय जलना-जोरसे जलना, तेज़ जलना
हिमायती-समर्थक, पुरस्कर्ता

प्रश्नावली :--

१. वाक्यमें प्रयोग कीजिये:—गज़बकी; काम देना; यू ही; गंध आना; धायँ धायँ जलना।

२. संदर्भ देकर स्पष्ट कीजिये :—

(क) तुम्हारे कला-दर्शनमें सामान्य आँख काम नहीं देती ...... अर्धोन्मीलित आँख अधिक काम देती है।

(ख) तुम्हारी यह शोध..........नेत्र-रोगसे पीड़ित रहती है।

(ग) अुस अुत्प्रेक्षाको तो............बालककी अबोध अवस्था ।

(घ) राजनेताके आगे राजनीतिक.........समस्याओंका होता है ।

(ङ) कहते हैं जिस चित्रको.........अिन्हींका सांगोपांग साहित्य ।

(च) 'कैमरा' अचानक वज्रकी तरह......चित्रित नहीं किया ।

(छ) यह कैसे हो सकता है..................अर्जनार्थ न हो ।

(ज) जब बढ़अी लकड़ी............प्रतिबंध क्यों लगाया जाय ?

३. (अ) वर्तमान चित्रकारोंके जिन दोषोंपर अिस लेखमें प्रकाश डाला गया है अुनको स्पष्ट कीजिये ।

(ब) आदर्श चित्रकलाके स्वरूपके विषयमें जो अिशारे लेखकने किये हैं अुनका वर्णन कीजिये ।

(स) जिस व्यंग्यसे अिस लेखमें काम लिया गया है अुसपर प्रकाश डालिये ।

४. अिसी ढंगका निबंध लिखिये :—'गायक से' ।

---

२. मनुष्यत्व की हुंकार

(श्री यशपाल)

शब्दार्थ :—

अुर्वरा शक्ति–अुपजाअू शक्ति

ओला–वृष्टिके हिम-पाषाण

चुक्कड़–पानी या शराब पीनेका मिट्टीका गोल छोटा बर्तन

ड्राय जिन–एक प्रकार की शराब

गज्जक–वे पदार्थ जो शराब पीनेके पीछे मुंहका स्वाद बदलनेके लिये खाये जाते हैं

गाज पड़ना–विपत्ति आना, ध्वंस या नाश होना

अिमदाद–सहायता

जूझना–लड़ना; लड़ मरना

आड़–रोक, प्रतिबंध

बेड़ा–कअी जहाजों या नावों आदिका समूह

ढाबा–भोजनकी दूकान

बोसीदा–सड़ा गला, बेदम

कुड़मुड़ाना–चर्राना, चूर चूर होना

बारूद–तोप या बंदूककी दारू

लड़ाकू–झगड़ालू

खडुआ–वलय, अेक प्रकारका गहना
बामी–टीलेदार अूंची जमीन जिसमें चीटियाँ व कीड़े-मकोड़े रहते हैं।
सींक–तिनका, किसी महीन रसका डंठल
बंजर–अूसरभूमि
भिटा–बामी
अिश्तहार–विज्ञापन, सूचना
मेढ़ा–भेड बकरेकी जातिका अेक सींगदार छोटा चोपाया।
बेखुद–बेसुध, अपने आपेमें न होना
आयतन–विस्तार
गुरूर–घमण्ड, अहंकार
तानाशाही–सर्वाधिकारित्वका जुल्म

प्रश्नावली :—

१. वाक्योंमें प्रयोग कीजिये :—लेखा लगाना; दूसरोंके पेटपर हाथी नचाना; जी-जानसे लड़ना; दावा करना; फटी आंखों न देख सकना।

२. संदर्भ देते हुअे स्पष्ट कीजिये :—

(क) अिस मृत्युको रोक................मनुष्य ही करता है।

(ख) अिस पृथ्वीपर लोट..................गड़ जाता है।

(ग) मनुष्य समाजके लिये.................टेढ़ा प्रश्न है।

(घ) यह नया मनुष्यत्व.....................अूंचा जायेगा।

(ङ) मनुष्यके प्राण.....................गोली अधिक अच्छी है।

(च) प्राचीन व्यवस्था.....................नहीं देख सकते।

(छ) प्राण जानेपर भी....................सामाजिक भावना

३. (अ) समाजवादकी कल्पनाका जन्म क्यों और कैसे होता है?

(ब) समाजवादका कौन क्यों विरोध करते हैं?

(स) सीमित राष्ट्रीयता और देशभक्ति समाजवाद के लिये किस प्रकार घातक हैं?

४. निबंध लिखिये :—

(य) हिन्दुस्थानकी दृष्टिसे समाजवादकी अुपयोगिता।

(र) गांधीवाद और समाजवाद।

(ल) पराधीन देशका आदर्श—राष्ट्रीयता या अन्तर्राष्ट्रीयता?

---

३. क्रोध

(पं. रामचंद्र शुक्ल)

शब्दार्थ :—

परिज्ञान–पूर्णज्ञान
आविर्भाव–अुत्पत्ति
चिरनिवृत्ति–सदाके लिये दूर होना
विधान–प्रबं , निर्माण
तमाचा–थप्पड़
आलम्बन–सहारा, आश्रय, आधार
बेगाना–पराया
कुश–दर्भ, एक प्रकारका घास
मट्ठा–छाछ
समीचीनता–योग्यता, अुपयुक्तता,
अमर्ष–असहिष्णुता, अपना तिरस्कार करनेवालेका कोअी अपकार न कर सकनेके कारण तिरस्कृत व्यक्तिमें अुत्पन्न होनेवाला द्वेष या दुःख
अचार–मसालोंके साथ तेलमें रखकर खट्टा किया हुआ आम आदि फल

प्रश्नावली:—

१. वाक्यमें प्रयोग कीजिये :—हाथ अुठाना; आह-अूह करना; बात ही बातम; ेढ़ी-मोधी सुना जाना; अंकुश रखना; नौबत आना; कंकड़-पत्थर तोड़ने लगना; किनारे हो जाना; त्योरी चढ़ जाना; अूंची-नीची पचाते रहना; वैर निकालना ।

२. संदर्भ देकर स्पष्ट कीजिये :—

(क) क्रोध अपनी अिस सहायताके................पर नाम दयाका ही होता है ।

(ख) क्रोध रोकनेका अभ्यास........................साधकोंसे कम नहीं होता ।

(ग) क्रोधोत्तेजक दुःख जितना ही... ....मनोरम दिखाअी देगा ।

(घ) क्षमा जहांसे श्रीहत....................सौंदर्यका आरंभ हो जाता है ।

(ङ) वैर क्रोधका अचार या मुरब्बा है।

(च) मूर्ख हास्य रसके बड़े प्राचीन आलम्बन हैं।

३. (क) चेतन सृष्टिके भीतर क्रोधका विधान किसलिये है?

(ख) शुद्ध प्रतिकारके रूपमें किये गये क्रोधकी क्या अुपयोगिता है?

(ग) क्रोधके सफल होनेके लिये क्या क्या शर्तें हैं?

(घ) क्रोधके विरोधका अुपदेश धर्म, नीति और शिष्टाचार तीनोंमें पाया जाता है। क्यों?

(ङ) क्रोध और अमर्षमें क्या भेद है?

४. निबंध लिखिये :—'क्रोध मनुष्यका शत्रु नहीं मित्र है'।

---

४. गोसाअींजीकी कला

[बाबू श्यामसुंदरदास]

शब्दार्थ :—

आवरण—जामा, पोशाक, पहनावा

विटप—वृक्ष

माहिं—में

चौगान—अेक खेल, जिसमें लकड़ीके बल्लेसे गेंद मारते हैं

गाढ़ा समय—कठिन समय

व्यवधान—बाधा

काण्ड—घटना

सुभट—वीर, योद्धा

निदरि—निरादर, अपमान या निंदा करके

अुन्नत-मना—अुच्च हृदयवाला

निअराअि—पास, समीप या निकट आना

असमंजस—दुविधा

बाष्प-गद्गद् कंठसे—भर आये गलेसे, अवरुद्ध कंठसे

करि-निकर—हाथियोंका समूह

निपातअुँ—मार डालूं, नष्ट करूं

पारगामी—पार जानेवाली, अन्तर्वेधिनी, समर्थ

जिमि—जैसे, जिस प्रकार

अेकाकी—अकेली

विश्वविश्रुत—जग-प्रसिद्ध

शक्ति—अेक शस्त्र, साँग, तलवार, बर्छी

व्यतिक्रम—अुल्लंघन, अुलट-पलट

सृजन—निर्माण

संजुत-साथ
भौतिकता-सांसारिकता
सधना-पूरा या सिद्ध होना
लवा-तीतर जैसा किंतु अुससे छोटा अेक पक्षी
गर्हित-निंदित, दूषित।

प्रश्नावली :—

१. वाक्य में प्रयोग कीजिये :—गाढ़ा समय; जवाब दे जाना; कोरी कोरी सुनाना; अूठा रखना; कहवे बनना।

२. संदर्भ देकर स्पष्ट कीजिये :—

(क) जिस प्रकार गोसाअींजीका............अुनकी कविता भी।
(ख) धर्मसादृश्य, गुणोत्कर्ष................ प्रसारमें समर्थ हुअे हैं।
(ग) मनुष्यके स्वभावमें..............चित्रण सदोष हो जायगा।
(घ) दूसरेके साथ युद्धमें............... न मनुष्यताके रंगसे ही।
(ङ) अुद्देश्य चाहे कितना ही.............अुतार लानेके लिअे ही आवश्यक है।
(च) अिससे अिस घटनाका................गोसाअींजी चाहते न थे
(छ) कविता करके तुलसी न लसे.................. तुलसीकी कला।

३. अुत्तर दीजियेः—(अ) साहित्यमें प्रकृति-चित्रण तथा चरित्र-चित्रणका क्या स्थान है?
(ब) गोस्वामीजीके प्रकृति-चित्रण तथा चरित्र-चित्रणकी विशेताओंको संक्षेपमें लिखिये।

४. निबंध लिखिये :—'तुलसी केवल हिंदी और भारतके नहीं बल्कि संसार भरके कवि हैं।'

---

५. अतीतके चलचित्र

[श्री महादेवी वर्मा]

शब्दार्थ :—

अरण्यरोदन-वह बात जिसपर कोअी ध्यान न दे
बलात्-जबरदस्तीसे
अभ्यर्थना-स्वागत, प्रार्थना

दूध फेनी–अेक पक्वान जो दूधके साथ खाया जाता है ।

निहोरा–अनुरोध

मुसीबत–संकट

साक्षात्–भेंट, प्रत्यक्ष दर्शन

प्रश्नावली :—

१. वाक्यमें प्रयोग कीजिये :— अरण्यरोदन होना; अुधेड़-बुनमें पड़ना; झक मारके; मुसीबतमें घसीटना ।

२. सदर्भ देते हुअे स्पष्ट कीजिये :—

(क) मैं कवि हूँ........................में न अुठती ।

(ख) सामाजिक विकृतिका..........मेरा यही पहला साक्षात था ।

(ग) कीचड़ से कीचड़ को..............जीनेकी शक्ति देती है ।

(घ) अिसके आनेसे......................कोअी ज्ञान नहीं ।

(ङ) युगोंसे पुरुष........................दण्ड देता आ रहा है ।

(च) अिस पतझड़के युगमें.............करनेवाली नहीं जानती ।

(छ) वृद्ध अपने...........................क्षीण स्वर दब गये ।

३. (अ) जीवनकी किस विभिषिकाका चित्र यहाँ खींचा गया है ? संक्षेपमें वर्णन कीजिये ।

(ब) विधवा माता या कुमारी माताओंकी ओर समाजका क्या दृष्टिकोण होना चाहिये ?

(स) 'गद्यमें भी महादेवीका कवित्व प्रधान है' सिद्ध कीजिये ।

४. निबंध लिखिये :—' किसी निर्दोष किन्तु समाज द्वारा निंदित गरीब का शब्दचित्र । '

६. मैं और मेरा युग

[श्री भगवतीचरण वर्मा]

शब्दार्थ :—

निजत्व–अपनापन
सँकरी–तंग, सिकुड़ी
सुलझाना–हल करना
अुलझ आना–फँस जाना
अुलझन–समस्या, दुविधा
बाल की खाल निकालना–बड़ी छानबीन करना
खुदी–अहंकार, स्वार्थ, घमंड
आपत्ति–एतराज, अुज्र
अुभड़कर–अूपर अुठकर
पेंच-दाव–दाव-घात, अुलझन

प्रश्नावली :—

१. वाक्यमें प्रयोग कीजिये :—बुरी तरह; पर तुले होना; बालकी खाल निकालना ।

२. संदर्भ देकर स्पष्ट कीजिये :—

(क) दुनियामें आजतक कोअी अहंके अूपर न अुठ सका है और न अुठ सकता है ।

) दुनियामें आज नग्न रूपमें............बुनियादी सिद्धान्तका विरोधी है ।

(ग) मनुष्यमात्रके लिये अपना हित अपना सत्य है और दूसरोंका हित मानवताका सत्य है ।

(घ) अहंको अितना अधिक विकसित करना...............अहंको असीमत्व प्रदान करना है ।

(ङ) मनुष्यको पशुसे................ मानवताका चरम विकास है ।

(च) पुरु प्रकृतिको अपने ही ....पशुताको नहीं जीत पाया है ।

(छ) भक्ति असमर्थता और पराजयकी प्रतिक्रिया है ।

(ज) साहित्य कुरूपताके प्रति..........................अुत्पन्न कर सकता है।

३. (अ) जिस लेखके आधारपर लेखकके व्यक्तित्वके पहलुओंपर प्रकाश डालिये।

(ब) लेखकके अपने युगके विषयमें जो विचार हैं अुनको संक्षेपमें बतलाअिये।

(स) अहंको अुपासना और समाजका हित अिन दोनोंके समन्वयको स्पष्ट कीजिये।

(द) लेखकके बुद्धिवादपर प्रकाश डालते हुअे बुद्धिवादकी सीमाओंका अुल्लेख कीजिये।

---

७. दण्डदेवका आत्म-निवेदन

(पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी)

शब्दार्थ :—

जमींतोड़—जमीन तोड़कर बाहर निकला हुआ
हुलिया—रूप-रंग आदिका विवरण, आकृति
जराजीर्ण—बुढ़ापेसे गलित
समदर्शी—सबको समान देखनेवाला
अनवरत—सतत
जिल्द—पुस्तक का खण्ड
भद्र—सभ्य
आदिम—प्राथमिक
स्यामवासी—भारतसे पूर्व स्याम देशका निवासी
अख्तियारात—अधिकार
बेतरह—असाधारणतया, बुरी तरह
फिरका—समूह, पंथ, सम्प्रदाय
शूकर-शावक—सूअरका बच्चा
तत्त्वावधायक—देख-रेख करनेवाला, परिपालक
प्रतिपत्ति—प्राप्ति, सम्मान
अुपचार—व्यवहार, प्र ेाग
विलायत—दूसरोंका या दूरका देश
टापू—द्वीप
ज़ोर-आजमाअी—शक्तिकी परीक्षा
परित्राण—रक्षा

अन्तर्हित-अदृश्य, गायब
तिरोभाव-अनुपस्थिति
देशनिर्वासन-देश-निकालेका दण्ड
अभिभावक-परिपालक, संरक्षक
अपाहिज-असमर्थ, दुर्बल
गुहदा-गुण्डा
भवानीदीन-भंग घोटनेका मोटा डंडा, सोंटा
लठैत-लाठीबाज

प्रश्नावली:—

१. वाक्यमें प्रयोग कीजिये :-झूठी बोलना...से लेकर...तक; नाक समझा जाना; दिल दहल उठना; लिख मारना; क्या....क्या...क्या; बेतरह; बातबातमें; आँख बंद करके; खबर लेना; अक्ल ठिकाने लगाना ।

२. संदर्भके साथ स्पष्ट कीजिये :-

(क) हमीं तुम लोगोंके-मानव जातिके-भाग्य-विधाता और नियंता हैं ।
(ख) विवाहिता वधुयें................लालायित रहती थीं ।
(ग) हम नहीं तो समझना चाहिये कि परमेश्वर ही रूठा है ।
(घ) जीते रहें, गन्नेकी खेती करने वाले गोरकाय विदेशी ।
(ङ) वे डरते हैं कि न हो.............यह साधन भी छिन जाय ।
(च) थाना नामके देवस्थानोंमें हमारी पूजा होती है ।

३. (अ) दण्डदेवका भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न समयोंमें कैसा प्रभुत्व रहा?
(ब) शारीरिक सजा (Corporal Punishment) के विषयमें आपकी क्या राय है?

४. निबंध लिखिये :--(य) तलवारका आत्मनिवेदन
(र) हत्यारेका ,,
(ल) फाँसीके फंदेका ,,

---

८. बुढ़ापा

(पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र')

शब्दार्थ :-

दौर-चक्कर, फेरा, दिनोंका फेर
पैमाना-मान-दंड, परिमाण
बेला-किनारा, तट
दिन-मणि-सूर्य
किष्किंधावासी-बंदर (किष्किंधा-बालि वानर की राजधानी)
किटकिटाकर टूट पड़ना- क्रोधसे दाँत पीसकर टूट पड़ना
हजो-निंदा
खिलखिलाना--जोरसे शब्दकर हँसना
धूम-चौकड़ी मचाना-ऊधम मचाना
टुकुर टुकुर देखना-दीनभावसे ताकना
भुक्तभोगी-अति अनुभवी
समन (समन्स)-बुलावा
गर्दिश--घुमाव, चक्कर, विपत्ति
विभूति-समृद्धि, ऐश्वर्य, वैभव
प्राची-पूर्व दिशा
हनुमानगढ़ी-बंदरपुरी
खाँव खाँव करना-काट खाने दौड़ना, भयानक रूप धारण करना
नोच खाना-नखोंसे फाड़ना
झुर्रीदार-सिकुड़नोंसे भरा, शिकनोंसे भरा
टोला-मुहल्ला
टकासा मुँह-शर्मिंदा या लज्जित चेहरा
खखारना-थूक या कफ़को बाहर निकालनेके लिये शब्द-सहित वायुको गलेसे बाहर फेंकना।
अटा-अटारी, छत।
छनना-किसी नशेका पिया जाना

प्रश्नावली :—

१. वाक्योंमें प्रयोग कीजिये :—

सुफ़ेद झूठ; मुठ्ठी में कर लेना; होली खेलना; हाथ लग जाना; किट-किटाकर टूट पड़ना; नोच खाना; (पर) उतारू हो जाना, मुँह-मांगा देना; धूम-चौकड़ी मचाना; टकासा मुँह लिये; टुकुर टुकुर देखना; चंगुल में फँसना।

२. प्रसंग देकर स्पष्ट कीजिये :—

(क) लड़कपनका खोना वाह ! वाह !—बुढ़ापेका पाना हाय ! हाय !

(ख) जीवनका अर्थ 'वाह' नहीं 'आह' है: हँसी नहीं रोदन है, स्वर्ग नहीं नरक है।

(ग) कोरी बातोंमें दार्शनिक ....आगे बढ़ने वालोंकी।

(घ) लड़कपन और जवानीके हाथों.........सृष्टिकी अिति हो जाय।

(ङ) अब भी संसारमें दया.................मतवाली जवानी नहीं।

(च) बुढ़ापेकी बादशाहीसे...............करोड़ दर्जा अच्छी है।

(छ) यह दर्द सर अैसा है ....दर्द न जाअे।

(ज) बुढ़ापा वह पतन...............नारायणो हरिः।

३. (अ) बुढ़ापेकी कठिनाअियाँ वर्णन कीजिये।

(ब) बचपन और जवानीके सुखोंका संक्षेपमें जिक्र कीजिये।

४. निबंध लिखिये :—

(अ) बुढ़ापेके लाभ, (आ) बचपनके दुःख, (अि) जवानी।

---

९. बदला

[पं. श्रीराम शर्मा]

शब्दार्थ :—

बपौती–बापसे मिली हुअी संपत्ति

आडम्बर–ढोंग, झंझट

भीरुता–कायरता, भीति

आतंकजन्य–भयोत्पन्न

झील–सरोवर

कोंपल–पेड़का नया पत्ता, अंकुर

धोखाधड़ी–छल-कपट

ढेंक–अेक जल-पक्षी

चुगा–चुगनेकी चीज

बूता–शक्ति, सामर्थ्य

नरकल–अेक पौधा जिसकी चटाअियाँ बनती हैं।

मनहूस-अशुभ
आशंका-भय, संदेह
निगलना-खा जाना
फंदा-जाल
कारगर-उपयोगी, प्रभावकारी
झाग-फेन, गाज।
सहम जाना-डर जाना
थूथनी-शूकर आदि पशुओंका मुख
छीछड़े-मांसका बेकाम टुकड़ा
छिपकली-बिसतुइया, पल्ली
डोंगी-नोका

प्रश्नावली:-

१. वाक्यमें प्रयोग कीजिये :—

(क) ज्योंही.........कि; (ख) दिन दूना रात चोगुना बढ़ना; (ग) जीवनकी नौका डूब जाना; (घ) या तो......या; (ङ) बहुत कुछ; (च) टससे मस न होना; (छ) बातें बघारना; (ज) जानके लाले पड़ना।

२. संदर्भ देते हुए स्पष्ट कीजिये :—

(अ) वे लोक......कसोटी बनाते हैं।
(ब) अमुक बात होनेसे........कुछ नहीं होता।
(स) जितने बड़े और भयंकर मगर को.................सरल है।

३. मध्यवर्ती कल्पनाका विस्तार कीजिये :—

(य) प्रतीक्षा और सहिष्णुताका फल प्राय: मिलता ही है।
(र) प्रेमीके लिये जान देना कुछ कठिन बात नहीं है।
(ल) बहुतसे लोगोंको जानकी अपेक्षा जीविका अधिक प्यारी होती है।

४. मुतशवीने अपनी स्त्रीके खूनका बदला किस प्रकार लिया ?

५. निबंध लिखिये :— किसी शिकारका वर्णन।

१० केवल तीन ख़त

(भदन्त आनन्द कौसल्यायन)

शब्दार्थः-

हेय-त्याज्य, निकृष्ट
सम्मति-मत, राय
अघाना-तृप्त होना, प्रसन्न होना
चुस्त-कसा हुआ, दृढ़, मजबूत
जलावतनी-देशनिर्वासन, देशनिकाला
सिलसिला-क्रम, परंपरा
गुदगुदी-आह्लाद, अुल्लास
अिज्ञानिब-अपने राम, खुद
मेंड़-बाँ , हद
मगरिब-पश्चिम
कुण्डी-किवाड़की साँकल

प्रश्नावलीः—

१. वाक्यमें प्रयोग कीजियेः-

(पर) अभिमान करना; चूंकि; अपने रामको ।

२. निम्नलिखित प्रश्नोंके अुत्तर दीजियेः-

(क) प्रेमचंदजीके विषयमें लेखक महोदयके क्या क्या भाव हैं ?
(ख) अिस लेखसे लेखक महोदयके विषयमें आप क्या क्या बातें जान सकते हैं ?

३. प्रसंग देकर स्पष्ट कीजियेः-

(अ) जो बातें धर्मग्रंथोंमें.........अुपदेश दे जाते हैं ।
(ब) जो अीश्वरको नहीं ....अीश्वरके माननेका फायदा ?
(स) लेकिन जिन संपादकोंने..........छापूँगा ।
(द) लेकिन भारतीय साहित्य............राष्ट्रीय समस्या है ।

४. निबंध लिखिये :—'स्मरणीय पत्र'।

११. मेहमान *

[श्री शौकत थानवी]

शब्दार्थ :—

नाज़िल–आ पहुँचना या पड़ना
मेज़बान–आतिथ्य करनेवाला गृहस्थ
तहज़ीब–सभ्यता
लाहौल बिला कूवत-ओश्वरके सिवा ओर कोओी शक्ति नहीं है। (घृणा या तिरस्कार सूचित करनेके लिये प्रयोग)
मगरीब–सायंकालीन नमाज
मुख्तलिफ़–विभिन्न
बरपा होजाना–आ पड़ना
कुरेदना–खुरचना
कालीन–गलीचा
आवारागर्दी–लच्चापन, बदमाशी
तकाज़ा–तगादा, प्रेरणा
हमखयाल–समान विचार रखनेवाले
आडम्बर–ढोंग, दिखावा
निशास्ता–गेहूंको भिगाकर अुसका निकाला या जमाया हुआ सत या गूदा
पपीता–अण्ड-खरबूजा

प्रश्नावली :—

१. वाक्यमें प्रयोग कीजियेः—बला सिर लेना; नाक काटना, हथेलियोंपर सरसों जमाये देना; तोबा तिल्ला मचाना; कानपर जूँ तक न रेंगना; बातको पी जाना; नाकमें दम कर देना; आनाकानी करना।

२. संदर्भके साथ स्पष्ट कीजियेः—(१) अंग्रेजोंपर यह मेहमान... ...कभी नहीं होते। २. संसारसे मेहमानी मेजबानी...... ...सृष्टि की जावे।

३. (१) मेहमानोंको बला क्यों कहा है ?
(२) मेहमानोंकी विभिन्न श्रेणियाँ बतलाअिये।
(३) लेखकको कौन मेहमान अच्छे लगते हैं ?

४. **निबंध लिखिये :**—(क) अपने मेहमानोंके अनुभव; (ख) मेजबान: (ग) दोस्त।

---

* प्रस्तुत लेखका हिन्दी अनुवाद श्री शिवनाथसिंह शाण्डिल्यने किया है।

१२. जीवन और शिक्षण *

[श्री विनोबा भावे]

शब्दार्थ :—

हौआ–बच्चोंको डरानेके लिये अेक कल्पित भयानक वस्तुका नाम, भकाऊ

प्रश्नावली :—

१. वाक्यमें प्रयोग कीजिये :—चक्कर लगाना, जी चुराना।

२. संदर्भ देते हुअे स्पष्ट कीजिये :—

(क) भगवान ने.........वह गीता पची।

(ख) जिंदगीको.........सारा 'हौआ' है।

(ग) हमारे लिये.........ओश्वरकी ओरसे है।

(घ) बंदरके हाथमें.........प्रति वफ़ादार है।

(ङ) पर शिक्षक.........किसी प्राणीकी।

(च) शिक्षण कर्तव्य कर्मका आनुषंगिक फल है।

३. वर्तमान शिक्षा-पद्धतिमें क्या क्या दोष हैं ?

४. जीवन और शिक्षणका क्या संबंध होना चाहिये ?

५. **निबंध लिखिये :—**

(अ) वर्धा शिक्षण-योजना।

(ब) सांस्कृतिक शिक्षा और औद्योगिक शिक्षा।

---

* प्रस्तुत लेखके अनुवादक श्री हरिभाऊ अुपाध्याय हैं।

---

१३. कुत्ते *

(श्री. अेस. अेम. बुखारी)

शब्दार्थ :—

दरियाफ्त करना–पूछना

जनाब–महाशय

लंडूरा–पूँछकटा पक्षी

दाद देना–प्रशंसा करना

---

* प्रस्तुत लेखका हिन्दी अनुवाद श्री व्रजमोहन वर्माने किया है।

मर्सिया–मृत्युके संबंधमें बनाओ शोकसूचक कविता

परले सिरेका–बहुत ज्यादा

लहजा–बोलनेका ढंग

सिर खपाना–माथापच्ची करना

भन्नाना–गुस्सा होना, बड़बड़ाना

हंगामा–शोर

तर्ज़–चाल

छुतैला–स्पर्शजन्य, संसर्गजन्य

चूँ-चपड़ करना–प्रतिवाद करना

अद्‌वान–खाटके पैतानेमें तनावके लिये लगी रस्सी

हंगामा गरम होना–शोर मच जाना।

अित्तिफ़ाक़–संयोग

अेतराज़–आपत्ति

सड़क नापना–चलते बनना

अुरफी–व्यक्तिका नाम

दम लेना–विश्राम करना

मुशायरा–कविसम्मेलन

बाज बाज़–कुछ कुछ

सीनाज़ोरी–ज्यादती

चिल्ल-पों–शोरगुल

प्रश्नावली :-

१ वाक्यमें प्रयोग कीजिये:–हंगामा गरम होना; सिर खपाना; बैर मोल लेना; हाथ-पाँव फूल जाना; कुत्तेने काटना; तुले होना; कब्रमें पाँव लटकाये बैठना; बाज आना; तीर मारना; परले सिरेका; मेरे नजदीक; चूं-चपड़ करना; सड़क नापना; सीनाजोरी करना; रोंगटे खड़े हो जाना।

२. संदर्भके साथ स्पष्ट कीजिये :—

(क) चौकीदारीकी चौकीदारी और संगीतका संगीत।

(ख) घमण्ड अिस बातका है कि तानसेन अिसी मुल्कमें तो पैदा हुअे थे।

(ग) अगर आपने भी.........प्रार्थना पढ़ने लग जायेंगे।

(घ) 'अिस कुत्तेकी मिट्टीसे भी कुत्ता घास पैदा हो।'

(ङ) अैसी छिछोरी चीजोंके लिये.........खिलाफ़ समझते हैं।

(च) लेकिन कौन जानता है ....काटना शुरू कर दे।

३. कुत्तोंके कारण लेखक महाशयको क्या क्या मुसीबतें अुठानी पड़ी?

४. अिस लेखमें जो विनोद और व्यंग्य है अुसको स्पष्ट कीजिये।

५. निबंध लिखिये:— चूहे; खटमल।

---

१४. शेष स्मृतियाँ

(डा. रघुवीरसिंह)

शब्दार्थ :—

ध्वंसावशेष–खण्डहर
साक़ी–शराब पिलानेवाला; प्रेमिका या प्रिय
सिसकना–भीतर ही भीतर रोना
कसकना–दर्द करना
टीस–वेदना, पीड़ा
बवण्डर–आँधी
दम तोड़ना–आखिरी साँस लेना
विलगना–विच्छेद, अलगाव
ज्वार–(समुद्रका) बढ़ाव
आंखें डबडबाना–आँखोमें आँसू भर आना
प्रस्फुटन–विकास
पहलू–बाजू
अंधड़–तूफान
अदा–हाव-भाव
अर्क–सूर्य
आविर्भाव–अुत्पत्ति

प्रश्नावली :—

१. वाक्यमें प्रयोग कीजिये :—दिलपर पत्थर रखना; दम तोड़ना।

२. संदर्भ देते हुअे स्पष्ट कीजिये :—

(क) कठोर हृदय समय............स्मृति बन गया।
(ख) आह ! स्वप्नमें भी स्वर्ग.........देखनेकी यह लत।
(ल) अब किन्हें मैं अपनी.........व्यक्ति समझूँगा ?

३. मनुष्यके जीवनमें स्मृतियोंका क्या स्थान है ?

४. लेखक स्मृतियोंको अपनी अेकमात्र निधि क्यों समझते हैं ?

५. स्मृतियोंको बिदा देते वक्त लेखकको दुःख क्यों होता है ?

६ **निबंध लिखिये :—**

(अ) आह रे वह मधुर योवन !
(ब) आह रे वह मधुर बचपन !
(स) भग्नाशाअें
(य) सुनहले सपने
(र) 'स्मृतियोंकी बस्तीसी बस गयी है अिस हृदयमें'।